इकाई-१

बीसलदेव रासो

इकाई की रूपरेखा :

१.० इकाई का उद्देश्य
१.१ प्रस्तावना
१.२ शीर्षक का विस्तार से अध्ययन
१.३ बीसल देव रासो की कथावस्तु
१.४ बीसल देव रासो की भाषा
१.५ सारांश
१.६ वैकल्पिक प्रश्न
१.७ लघुत्तरीय प्रश्न
१.८ बोध प्रश्न
१.९ संदर्भ ग्रंथ

१.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई का मूल उद्देश्य बीसलदेव के रचना काल, कथावस्तू और उसकी भाषा आदि से छात्रों को अवगत कराना है। इस इकाई के अंतर्गत नरपति नाल्ह द्वारा रचित बीसलदेव रासो का अध्ययन किया जाएगा। इसमें इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता, इसके रचनाकाल, इसकी कथावस्तू और भाषा आदि सभी पक्षों की चर्चा की जायेगी।

१.१ प्रस्तावना

बीसलदेव रासो हिन्दी साहित्य की सर्वथा प्राचीन रचना के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत है, इसके रचनाकार नरपति नाल्ह है इसका रचनाकाल सं, १४०० वि. के आस पास माना जाता है। यह १०० पृष्ठों का ग्रंथ है। जिसमे लगभग १२ वर्षो के कालखंड का वर्णन किया गया है यह वर्णन वीरगीत रूप में हैं।

१.२ शीर्षक का विस्तार से अध्ययन

बीसलदेव रासो गीत प्रबंध के रूप में लिखित नरपति नाल्ह की प्रसिद्ध रचना है। इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में कुछ मतभेद है। नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित इस रचना के निम्नलिखित पद के आधार पर इसका समय संवत् १२१२ माना गया है।

mumotes.in

बारह सै बहोत्तरहाँ मझारि जेठ बदी नवमी बुधवारि।
नाल्ह रसायन आरम्भइ सारदा तूठी ब्रहमकुमारि।।

वैसे इसका निर्माण काल संवत १०७३ से १३७७ तक फैला दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि इस रचना को प्राचीनतम प्रमाणित करने की होड़ में गीत प्रबंध के गायकों नें इसे ग्यारहवीं शताब्दी के तीसरे चरण तक पहुंचा दिया है। इस सम्बन्ध में श्री अंगरचंद नाहटा का मानना है कि 'बीसलदेव रासो की भाषा सोलहवीं - सत्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी भाषा है। जिन विद्वानों ने ग्यारहवीं से सत्रहवीं शताब्दी तक की राजस्थानी भाषा का अध्ययन किया है वे भी इस बात को स्वीकार करेंगे। इस ग्रन्थ में प्राचीन भाषा का अंश बहुत कम–नहीं के बराबर है।' इसलिए इतिहास की दृष्टि से इस रचना का कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि इसमें ऐतिहासिक घटनाएँ जनश्रुति के आधार पर दी हुई जान पड़ती हैं। साहित्यिक महत्त्व के सम्बन्ध में भी इतना ही कहा जा सकता है कि इसमें कुछ उपमा और उत्प्रेक्षाएं ऐसी मिल जाती हैं जिनके कारण इसमें काव्य की झलक मिल जाती है। आचार्यों की दृष्टि से यह शुद्ध वार्ता मात्र है। इस प्रकार के अलग-अलग विचार इस ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों ने प्रकट किए है।

इस ग्रन्थ के रचनाकाल के सम्बन्ध में जो संदेह प्रकट हुए हैं उन्हें कुछ बिन्दुओं के रूप में देख सकते हैं।

१. राजा भोज की पुत्री का देहांत बीसलदेव के समय से लगभग सौ वर्ष पहले हुआ, अत: बीसलदेव के साथ उसका विवाह असंभव है। कोई भी समकालीन रचयिता इस प्रकार इतिहास के विरुद्ध नहीं लिख सकता।
२. बीसलदेव अत्यंत पराक्रमी योद्धा थे उन्होंने कई बार मुसलमानों को नाकों चने चबवाए थे। उन्होंने दिल्ली और झाँसी पर अधिकार भी कर लिया था। जो उनकी वीरता का ही परिचायक है। बीसलदेव रासो में इन घटनाओं का चित्रण नहीं मिलता जो कि होना ही चाहिए।
३. बीसलदेव जैसा युद्ध प्रिय व्यक्ति जो अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिए प्रयास करता रहा हो वह गुमनाम की स्थिति में बारह वर्ष तक उड़ीसा में रहा, यह भी असंभव है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने बीसलदेव का राजमती से विवाह सिद्ध करने के लिए बीसलदेव का समय संवत १०५८ सिद्ध कर दिया। इसके लिए उन्होंने कुछ ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाया। जिसके आधार पर उनका कहना है कि जैपाल संवत १००१ में महमूद से पुन: पराजित हुआ और उसने आत्मघात कर लिया। उसका पुत्र अनंगपाल अजमेर के चौहान राजा बीसलदेव के नेतृत्व में मुसलमानों के विरुद्ध लड़ा। अत: बीसलदेव का समय संवत १००१ से संवत १०५८ है। डॉ. वर्मा के अनुसार राजा भोज संवत १०७५ में राज्यासीन हुए और लगभग ४० वर्षो तक राज्य किया।

इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का कहना है कि 'कवि ने अतिरंजित कल्पना से काम लिया है। बीसलदेव अत्यंत प्रभावशाली राजा था, वह स्वयं संस्कृत का कवि भी था। उसने अपना हर केलि नाटक शिला पट्टों पर खुदवाया था। उसके राज कवि सोमदेव ने 'ललित विग्रहराज' लिखा था। बीसलदेव रासो में बीसलदेव की वीरता का आभास नहीं मिलता. इस बात का भी प्रमाण नहीं कि उसने उड़ीसा को जीता था। ग्रन्थ में बार-बार कहा

mynotes.in

गया है कि रासो का निर्माण गायन के लिए हुआ है, पर राजपूतों के गायक विद्वानों का कहना है कि बीसलदेव रासो यहाँ कभी भी नहीं गया है। यह तो निश्चित है कि बीसलदेव रासो का बीसलदेव नरपति नाल्ह का समसामयिक नहीं है। राजपुताने में वर्तमानकालिक क्रियाओं का प्रयोग बार-बार देखा गया है। अत: बीसलदेव रासो का रचनाकाल संवत १५४५ से संवत १६६० है।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि बीसलदेव रासो के रचनाकाल को लेकर विद्वानों में मतैक्यता नहीं है। सबके अपने-अपने तर्क हैं लेकिन कथा लगभग सबकी एक ही है। नायक और नायिका सबके राजा बीसलदेव और रानी राजमती ही हैं। हाँ, राजमती के पिता राजा भोज के सम्बन्ध में कुछ विद्वान अलग मत अवश्य रखते हैं और अलग-अलग राजा भोज होने के दावे करते हैं।

१.३ बीसलदेव रासो की कथावस्तु

इस ग्रन्थ की घटनाओं के अनुसार - जैसलमेर के भोजराज की राजकुमारी राजमती का विवाह अजमेर के राजा बीसलदेव से हुआ। राजा भोज बहुत ही संपन्न थे इसलिए विवाह के समय में दहेज़ के रूप में बीसलदेव को बहुत सारी संपति और कुछ राज्य भी प्राप्त हुआ। जिसमें सपालदक्ष देश, सांभर सर, नागर चाल, बिछाल, तोंडा, तथा टोंक और बूँदी सहित कुडाल देश, मंडोवर, सोरठ, गुजरात एवं चित्तोड़ प्रमुख थे। दहेज़ के रूप में प्राप्त इतनी सम्पति ने बीसलदेव के मन में कुछ अहंकार भर दिया। ससुराल आने के बाद एक दिन आपसी वार्तालाप में बीसलदेव ने अपनी पत्नी राजमती से कहा कि मेरे समान धनवान कोई दूसरा राजा नहीं है। राजमती बहुत बातुनी और चतुर महिला थी। उसे समझते देर नहीं लगी कि उसके पति का अहंकार बढ़ रहा है। इसलिए उसने अपने पति की इन बातों का विरोध करते हुए कहा कि 'ऐसे अहंकार की कोई आवश्यकता नहीं है। इस दुनिया में एक से बढ़ कर एक अमीर और बलवान राजा हैं। एक तो उड़ीसा का ही राजा है। जहाँ आपके यहाँ सांभर झील से नमक निकालता है वहाँ उसके यहाँ की खानों से हीरे निकलते हैं।'

बीसलदेव को रानी का यह विरोध अच्छा नहीं लगा। उसने राजमती से यह प्रश्न किया कि 'जब तुम जैसलमेर की रहने वाली हो तो तुम्हें उड़ीसा के बारे में और वहाँ के राजा के बारे में कैसे पता है।' इस प्रश्न का उत्तर देते हुए उसने कहा कि 'पूर्वजन्म में मै हरिणी थी और उड़ीसा के जंगलों में रहती थी। उस जन्म में जानवर कुल में रहकर भी मैं एकादशी का व्रत निर्जल करती थी। एक दिन एक शिकारी ने मुझे बाण मारा दिया। मैं पूरी तरह घायल हो गई। लेकिन, मैं किसी पवित्र स्थान पर अपने प्राण त्यागना चाहती थी इसलिए वहाँ से भागने लगी और साक्षात जगन्नाथ जी के द्वार पर जाकर अपने प्राण त्याग दिए। मेरी भक्ति से प्रभावित स्वयं जगन्नाथ जी मेरे सम्मुख उपस्थित हुए और मुझसे वरदान माँगने को कहे। तब मरते-मरते मैंने उनसे यह वरदान माँगा कि यदि आप प्रसन्न हैं तो मुझे पूर्व देश में अगला जन्म मत दीजिये। पूर्व देश के लोग कुलक्षण होते हैं और अच्छी वस्तुओं का भोग नहीं करते बल्कि अभक्ष्य खाते हैं। इसलिए मेरा जन्म पश्चिम में हो क्योंकि वहाँ ग्वालियर में चातुर्य तथा जैसलमेर में रूपवती रमणियाँ और अजमेर में सुन्दर पुरुष होते हैं।'

यह सुनकर बीसलदेव क्रोधित हो गया और उसने कहा कि तुमने मेरा भी अपमान किया है इसलिए मैं तुमसे बारह वर्षों तक दूर रहना चाहता हूँ। अब आज से ही मैं प्रवास पर चला जाऊँगा और प्रयास करुँगा कि मेरे देश में हीरे की खान हो जाए। यह बात सुनकर रानी बहुत दुखी हुई और राजा को रोकने के बहुत सारे प्रयास किए लेकिन बीसलदेव अपनी जिद्द पर अड़े रहे। राजा के घर के अन्य सदस्यों नें भी उन्हें समझाने का प्रयास किया लेकिन वे मानने को तैयार नहीं हुए। अंत में रानी राजमती उनके साथ जाने को भी तैयार थीं जिससे वह विरह वेदना और संतानहीनता से बच सकें। बीसलदेव पर किसी के समझाने-बुझाने का कोई प्रभाव नहीं पड़ा इसलिए अकेले वे उड़ीसा की हीरे वाली खानों को देखने के लिए निकल पड़े। कथा के अनुसार वे चलकर कुछ महीनों में उड़ीसा जाते हैं और बिना अपना असली परिचय दिए ही वहाँ के राजा की सेवा में लग जाते हैं। इधर बारह वर्ष तक राजमती वियोग की वेदना में तड़पती रहती है। राजा के चले जाने कुछ दिनों बाद वह अपने मायके भी चली जाती है लेकिन पति से दूर होने की पीड़ा वहाँ भी बनी ही रहती है। इस बीच एक कुटनी औरत आकर विरह में तड़पती रानी के विचारों को बदलने का प्रयास भी करती है और उसके लिए दूसरा प्रिय खोज देने तक का लालच देती है। लेकिन रानी अपने पति के प्रति विश्वास जताते हुए उसे मार भगाती है। पति की अनुपस्थिति की पीड़ा को सहते हुए वह इतनी दुखी हो जाती है कि भगवान को उलाहना तक देती है कि 'मुझे स्त्री का जन्म क्यों दिया मैं अन्य जीव-जंतु होती तब भी सुख से रहती।' उसके बाद वह अपने पुरोहित को उड़ीसा भेजती है। पुरोहित वहाँ जाकर देखता है कि वहाँ गाय हल चलाती है, पर बैल से काम नहीं लिया जाता। लोग माड़ पीते हैं लेकिन चावल बचाते हैं। वहाँ बिना लटकन के घंटे बजते हैं। इन सबको देखते हुए पुरोहित जब बीसलदेव से मिलता है और उनको राजमती की विरह दशा के सम्बन्ध में बताता है तो वह उड़ीसा के राजा से वापस जाने की अनुमति मांगते हैं। वहाँ के राजा को जब पता चलता है कि यह आदमी कोई सामान्य नहीं बल्कि अजमेर का चौहान शासक बीसलदेव है तो वह उसे बहुत सारी धन-संपति देकर विदा करता है। इस प्रकार बारह वर्ष बाद बीसलदेव अजमेर लौटकर राजमती से मिलते हैं। राजा के आने बाद रानी द्वारा उपालम्भों का सहारा लेकर राजा को धिक्कारने का कार्य भी किया जाता है। रानी अपने पति को गृहस्थ जीवन के सम्बन्ध में कुछ-कुछ बुद्धु बताते हुए कहती है - स्वामी घी विणजियउ नइ जीतियउ तेल - 'हे स्वामी! तुमने व्यापार तो घी का जरुर किया किन्तु जीमा (खाया) तेल ही। इतनी सुन्दर स्त्री से विवाह तो किया किन्तु उसके उपभोग करने का सौभाग्य तुम्हें नहीं मिल सका।'

रचना का अंत सुखात्मक होता है और यहाँ सबके जीवन में सुख की कल्पना के साथ कथा का अंत होता है:

राणी राजा संऊ मिली
तिमि एण संसार मिलिज्यो सहु कोइ।

'जिस प्रकार राजा बीसलदेव अपनी रानी राजमती से मिले उसी प्रकार संसार के सब लोग अपनों से मिलें और साथ रहते हुए सुख का जीवन व्यतीत करें।' मूलत: बीसलदेव रासो एक लोकगीत है जिसमें लोक कल्याण की कामना के साथ लगभग सबका अंत होता है।

वैसे तो इस रचना में श्रृंगार के संयोग और वियोग रसों के अतिरिक्त यहाँ कोई दूसरा रस नहीं मिलता फिर भी धीरेन्द्र वर्मा के शब्दों में "स्वस्थ गार्हस्थ्य जीवन की इतनी वास्तविक, सरस और सफल रचना अपने साहित्य में दूसरी नहीं दिखाई पड़ती है। नायिका ने अनेक स्थलों

पर पति को 'मूरख नाह' और 'निगुणा नाह' कहा है - किन्तु इन संबोधनों के पीछे जो आत्मीयता की प्रेरणा है, जो सहज प्रेम का आग्रह है, वही तो इनकी विशेषता है।" अभिव्यक्ति की ताजगी और भावों की तीव्रता में बीसलदेव रासो सन्देश रासक से कहीं अधिक लोक जीवन के रंग में रंगा हुआ है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी साहित्य के अभ्युदय काल में लोक-जीवन का स्पर्श अधिक गहराई के साथ होने लगा था। इस ग्रन्थ पर भी लोकतत्त्व का प्रभाव बहुत गहरा दिखाई देता है।

१.४ बीसलदेव रासो की भाषा

बीसलदेव रासो की भाषा को उस युग की भाषा का संधिस्थल कहा जा सकता है। इसकी भाषा में अपभ्रंश और हिन्दी दोनों को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस ग्रन्थ की भाषा का रुप उसे संवत १२१२ के आस-पास की रचना सिद्ध करता है। चूँकि, ११ वीं शती की अधिकांश रचनायें डिंगल और पिंगल में लिखी गई हैं इसलिए यह रचना १३ वीं सदी की ही लगती है। इस सम्बन्ध में हम आचार्य रामचंद्र शुक्ल के विचारों को देख सकते हैं - 'भाषा की परीक्षा करके देखते हैं तो वह साहित्यिक नहीं, राजस्थानी है। इस ग्रन्थ से एक बात का आभास मिलता है। वह, यह कि श्लिष्ट भाषा में ब्रज और खडी बोली के प्राचीन रूप का ही राजस्थान में व्यवहार होता था। साहित्य की सामान्य भाषा हिन्दी थी जो पिंगल भाषा कहलाती थी। बीसलदेव रासो में बीच-बीच में बराबर इस साहित्यिक भाषा (हिन्दी) को मिलाने का प्रयत्न दिखाई पड़ता है।' इसी प्रकार डॉ. रामकुमार वर्मा नें भी बीसलदेव रासो की भाषा के सम्बन्ध में अपने विचार स्पष्ट करते हुए लिखा है कि - 'बीसलदेव रासो का व्याकरण अपभ्रंश के नियमों का पालन कर रहा है। कारक, क्रियाओं और संज्ञाओं के रूप अपभ्रंश भाषा के ही हैं। अतएव भाषा की दृष्टि से इस रासो को अपभ्रंश भाषा से सद्यः विकसित हिन्दी का ग्रन्थ कहने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं होनी चाहिए।' भाषा इसकी निश्चय ही आधुनिक राजस्थानी के निकट है। जिसमें हिन्दी भी जुडती हुई देखी जा सकती है।

काव्य सौन्दर्य : वस्तुतः बीसलदेव रासों में विरह वेदना अधिक चित्रित हुई है। इसमें कुल चार खंड है और सवा सौ छंद हैं। इसके प्रथम खंड में अजमेर के विग्रह राज चतुर्थ उपनाम बीसलदेव का परमार वंशज राजभोज की कन्या राजमती से विवाह का वर्णन है। द्वितीय खंड में राजमती के व्यंग्य पर राजा का उड़ीसा प्रवास है। तृतीय खंड में राजमती का विरह वर्णन तथा बारह वर्षों के अनंतर राजा का वापस आना उल्लिखित है। चतुर्थ खंड में राजमती का मायके चले जाना तथा बीसलदेव का उसे अजमेर वापस ले आने का वर्णन है।

यह सारी कथा ललित मुक्तकों में कही गई है। यदि इस कहानी को हटा दिया जाय तो इस प्रेम काव्य के मुक्तकों की एक सूत्रता में कोई अंतर नहीं आता। सन्देश रासक की ही तरह बीसलदेव रासो भी मुख्यतः विरह काव्य ही है। अंतर केवल इतना है कि बीसलदेव रासो के आरम्भ में विवाह के गीत हैं साथ ही बीसलदेव के परदेश जाने का प्रसंग वर्णित है। शेष प्रसंग सामान्य रूप से लगभग एक से हैं। यह ग्रन्थ विरह के स्वाभाविक चित्र संयोग और विप्रलंभ श्रृंगार की सफल उद्भावना और साथ ही प्रकृति के रूप चित्रण से परिपूर्ण है। इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि विविध घटनाओं के वर्णित होते हुए भी इस काव्य में इतिवृत्तात्मकता नहीं है। राजमति का चरित्र बड़ा ही सजीव तथा विलक्षण बन पड़ा है। डॉ.

शिवकुमार शर्मा के शब्दों में 'मध्य युग के समूचे हिन्दी साहित्य में जबान की इतनी तेज़ और मन की इतनी खरी नायिका नहीं दिख पड़ती।'

इस प्रकार यह कहना उचित होगा कि नरपति नाल्ह द्वारा रचित बीसलदेव रासो की रचनाकाल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद भले ही हो उसकी कथा की रोचकता और उसके महत्त्व को लगभग सभी लोग स्वीकार करते हैं। सुखद गृहस्थ जीवन का सन्देश देने वाला यह ग्रन्थ अपनी रोचक कथा के कारण सदैव याद किया जाता रहेगा। निश्चित ही ये रासो ग्रंथ हिन्दी साहित्य के लिए नींव के पत्थर कहे जा सकते हैं।

१.५ सारांश

प्राचीन काल के वीरगीत रूप में उपलब्ध बीसलदेव रासो का विस्तृत अध्ययन इस इकाई में हमने किया। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी बीसलदेव रासो के इतिहास, उसकी कथावस्तु और भाषा विषयी प्रश्नों के उत्तर दे सकेंगे।

१.६ वैकल्पिक प्रश्न

१) डॉ. रामकुमार वर्मा के अनुसार बीसलदेव रासो का रचना काल क्या है ?
क) सं ९५८ **ख) सं १०५८** ग) सं ११५८ घ) सं १२५८

२) बीसलदेव रासो की कथा कुल कितने खण्डों में विभक्त है ?
क) ८ ख) ६ **ग) ४** घ) २

१.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) राजमती के पिता जी कहाँ के राजा थे ?
२) पत्नी से नाराज बीसलदेव बारह वर्षों तक कहाँ थे ?
३) राजमती के अनुसार उड़ीसा की झीलों से क्या निकलता है ?
४) बीसलदेव रासो में कुल कितने छंद हैं ?

१.८ बोध प्रश्न

१) बीसलदेव रासो के रचना काल के सम्बन्ध में विद्वानों के क्या विचार हैं ?
२) बीसलदेव रासो के कथानक पर प्रकाश डालिए।
३) बीसलदेव रासो के काव्य सौन्दर्य और उसकी भाषा पर प्रकाश डालिए।

munotes.in

१.९ सन्दर्भ ग्रन्थ

१) हिन्दी साहित्य का अतीत (प्रथम भाग - भक्ति काल) - आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, वि.सं. - २०१६
२) हिन्दी साहित्य का इतिहास - डॉ. श्रीनिवास शर्मा, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण : १९८२
३) हिन्दी साहित्य (द्वितीय खंड - प्रारंभ से सन १८५० ई. तक) - सं. धीरेन्द्र वर्मा, ब्रजेश्वर वर्मा, भारतीय हिन्दी परिषद्, प्रयाग, प्रथम संस्करण - सन १९५९ ई.।
४) हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, डॉ. शिव कुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, अठारहवाँ संस्करण - २००३
५) हिन्दी साहित्य का इतिहास - सं. - डॉ. नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, संस्करण : १९८०

❖❖❖❖

munotes.in

नरपति नाल्ह

नरपति नाल्ह राजस्थान के प्रसिद्ध कवियों में से एक थे। वे पुरानी पश्चिमी राजस्थानी भाषा की सुप्रसिद्ध रचना 'बीसलदेव रासो' के रचयिता कवि थे। अपनी रचना 'बीसलदेव रासो' में नरपति नाल्ह ने स्वयं को कहीं पर 'नरपति' लिखा है तो कहीं 'नाल्ह'। ऐसा सम्भव हो सकता है कि 'नरपति' उनकी उपाधि रही हो और 'नाल्ह' उनका नाम हो। नरपति नाल्ह के जीवन से जुड़ी अधिकांश बातें, जैसे कि उनका समय कब का है और वे कहाँ के निवासी थे, आदि अज्ञात है। 'बीसलदेव रासो' की रचना चौदहवीं शती विक्रमी की मानी जाती है। इसलिए नरपति नाल्ह का समय भी इसी के आसपास का माना जा सकता है। नरपति नाल्ह को डिंगल का प्रसिद्ध कवि माना जाता है।

नरपति नाल्ह की 'बीसलदेव रासो' की रचना तिथि सं. 1400 वि. के आसपास की है। रचना वीरगीतो के रूप में उपलब्ध है। इसमें बीसलदेव के जीवन के 12 वर्षों के कालखंड का वर्णन किया गया है। वीरगीत के रूप में सबसे पुरानी पुस्तक 'बीसलदेव रासो' मिलती है।

बीसलदेव काव्य का रचयिता नरपति नाल्ह पश्चिमी राजस्थान का एक सुप्रसिद्ध कवि है। प्राय: रास परम्परा के दो रूप मिलते हैं—छन्द वैविध्य परम्परा से सम्बद्ध रासो काव्य तथा दूसरा एक छन्द प्रधान 'रास' काव्य। एक छन्द प्रधान रास काव्य परम्परा का बीसलदेव रास सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काव्य ग्रन्थ है। सामान्यतया यह स्वीकार किया जाता है कि नरपति नाल्ह का समय तेरहवीं शती का उत्तरार्ध या चौदहवीं शती का प्रारम्भ है। बीसलदेव कृति के विषय में यह भी कहा जाता है कि यह संवत् बारह सौ बहत्तर की रचना है, किन्तु इस विषय में विद्वानों में मतभेद है।

नरपति नाल्ह रचित 'बीसलदेव रास' ग्रन्थ एक छन्द प्रधान रचना है। इस कृति में केन्द्रीय रस शृंगार है और उसका विरह पक्ष अधिक सान्द्रता से चित्रित किया गया है। इस काव्य में एक अत्यन्त संक्षिप्त कथा है जो रानी राजमती से सम्बद्ध है। उसकी गर्वपूर्ण बातों के कारण उसका पति अप्रसन्न होकर प्रवास चला जाता है। उसके प्रवास गमन के बाद सम्पूर्ण काव्य अपनी रचनात्मक उत्कृष्टता के साथ सामने आता है। कवि नरपति नाल्ह आदिकालीन चारण परम्परा की शृंगार कविता की परिपाटियों का अनुसरण करता हुआ अपनी विलक्षण प्रतिभा का यहाँ परिचय देता है। इस कृति की श्रेष्ठता इसी में है कि गीति काव्य परम्परा के रचनात्मक सन्दर्भों को यह परम्परित काव्य दृष्टियों से समन्वित करके उसे सर्वथा सरस बना देता है। इसकी सरसता में काव्य परिपाटी की विदग्धता सम्पूर्ण कृति में व्याप्त है।

बीसल देव रास

[6]

भोजराज तणउ मिल्यउ छइ दिवाण
बहु नर बैठा छइ अगवाणि।
राइ राणा चिहुं दिसितणा।
राई जी बिनव राइ नरिंद।
बारइ हो बहतै आपणइ।
कुमरी परणाविन्यउ जोइ नइ विंद॥ भु.॥

[7]

पंडित तोहि बोलावइ रे राइ।
ल पतडउ पंडिया रावलइ आवि।
सुबर सोध म्हाका जोसिय।
आणिज्यो नागर चतुर सुजाण।
सुरग मोहइ देवता।
बीर विचक्षण बीसलदे चहुआंण॥ भु.॥

[8]

बंभण भाट बोलाविया राउ।
लगन सोपारीय दीन्ही पठाइ।
गढ़ अजमेरि नइ गम करउ।
पाटि वइसारि पषालिज्यो पाय।
बेटी कहिज्यो राजा भोज की।
राजमती बर बीसल राय॥ भु.॥

[11]

बांभण साहि समदिया बीसलराइ।
हांसला तेजीय नइ कुलइ कबाइ।
दीन्हउ छइ सोनउ सोलहउ।
पाट पटंबर पाका जी पान।
कर जोड़ी राजा भणइ।
आगलइ राव सिउं राखिन्यो मांम॥ भु.॥

[16]

राजा उतर्‌यउ धार मंझारि।
मन माहे हरषियउ राजकुमारि।
जाइ सषी करउ आरती।
सकल सम्पूरण पूनिम चंद।
सुरनर मोह्या सुरगका।
गोवल माहि जिसउं परतिष्य गोविंद॥ भु.॥

[19]

देस मालवइ दूवउ रे उछाह।
राजमती तणउ रच्‌यउ रे विवाह।
चंदन काठ कउ मांडहउ।
सोनाकी चउरी नइ मोतियांकी माल।
पहिलइ फेरइ दीजइ दाइजउ।
आलीसर सउं ऊपरि माल॥ भु.॥

[26]

राजाकइ बारि घुर्‌या रि निसाण।
मनमाहे हरषियउ बीसल चहुआंण।
परणियउ राजा भोज कइ।
म्हाकइ अंचल बंधीय राजकुमारि।
सफल दिहाडउ आजकउ।
जो घरि आविस्यइ जाति पमारि॥ भु.॥

munotes.in

[28]

गरब करि बोलियउ सइंभरि वाल।
मो सारिषउ नहीं अवर भूआल।
म्हा घरि सइंभरि उग्रहइ।
चिहुं दिसइं थांणा रे जेसलमेर।
लाख तुरीया पाषर पडइ।
गोरी राजकउ बइसणउ गढ अजमेरि॥ भु.॥

[29]

गरब म करि हो सइंभरि वाल।
तो सारिषा अवर घणा रे भूआल।
एक उडीसा कउ धणी।
वचन दुइ म्हांका माणि म. माणि।
जिउं थारइ सइंभरि उग्रहइ।
तिउं आं घरि उग्रहइ हीराकइ षांणि॥ भु.॥

[30]

थारउ जनम हुउ गोरी जेसलमेरि।
परिणि आणी तूँ गढ अजमेरि।
बार बरस की डावडी।
किहाँ रे उडीसउ अरु जगन्नाथ।
अन्न छोडउं पांणी तिजउं।
कहि नइ गोरी थारी जनम की बात॥ भु.॥

[31]

जइ तूं पूंछइ धरह नरेस।
वनषंड सेवती हिरणी कइ बेस।
निरजल करती एकादसी।
एक आहेडीय बनह मंझारि।
बिहुं बाणे उरि आं हणो।
म्हांकउ काल घट्यउ जगन्नाथ दुआरि॥ भु.॥

[32]

हिरणी मरणि समर्यउ जगन्नाथ।
आइ पहुतलउ त्रिभुवन नाथ।
संष रे चक्र गदाधरो।
मांगि हिरणी मनह विचारि।
जइ तू तूठउ त्रिभुवनधणी।
स्वामी पूरब देसकउ जनम निवारि॥ भु.॥

[34]

जनम मांगिउं स्वामी मारू कइ देसि।
राजकुंवरि अनइ रूप असेसि।
रूप निरूपम मेदिनी।
पहिरणइ लोवडी झीणइ रे लंकि।
आछी गोरी धण पातली।
अहर प्रवालीय नइ दाडिम दंत॥ भु.॥

[35]

चितह चमकियउ बीसल राव।
धणकउ बचन बस्यउ मनमाहिं।
म्हे विसराह्या गोरडी।
मइ तइं बरस बारह की काणि।
ऊलग कइ मिसि गम करउं।
जिउं घरे आवइ हीरा की षांणि॥ भु.॥

[36]

हूं विरासी राजा मइ कीयउ दोष।
पगरी पाणहीस्यउ किसउ रोस।
कीडी ऊपर कटकी किसी।
म्हे हस्या थे करि जाणियउ साच।
ऊभीय मेल्हि किउं चालीयउ।
स्वामी जलह विहूणा किम जीयइ माछ॥ भु.॥

munotes.in

[38]

हूं न. पतीजउं गोरी थारइ वइणि।
जां नवि देषउं आपणइ नइणि।
काल्ह ही उलगाणउ हुइ गम करउं।
तेंडू बंभण दिन गिणउ आज।
छोडउं देस सवालषउ।
गोरी कोकि भतीजा म्हे सउंपिस्यउं राज॥ भु.॥

[39]

ऊलग जाण कहइ धणी कउण।
घर माहे वरउ नहीं कूल्हडइ लूण।
घरि अकुलीणीय रे कलि करइ।
रिण का चंपिया घर न सुहाइ।
कइ रे जोगी हुइ नीसरइ।
कइ मुहडउ लेइ नइ ऊलग जाइ॥ भु.॥

[41]

गहिली हे मुंधि तोहि लागी छइ वाइ।
अस्त्री लेइ कोइ ऊलग जाइ।
भोली है नारि तू बाउली।
चङ्द कूडइ किउं ढांकियउ जाइ।
रतन छिपायउ किउ रहइ।
उवइ वाचाकउ हीणउ पूरब्यउ राउ॥ भु.॥

[42]

चालियउ उलगाणउ धण जाण न देइ।
मो नइ मारि कइ सरिसीय लेइ।
अंचल ग्रहि धण इम कहइ।
दुइ दुष सालइ हो सामीय सांझ।
जीवन मुरडीय मारिस्यइ।
दोस किसउ जइ साधण बांझ॥ भु.॥

[43]

छोड़ि नइ गोरी तूं दे मुझ जांण।
बरस दिन रहूँ तउ धारडी आंण।
कठिन पयोहर दिव किया।
हसि करि गोरडी कहिस विचार।
एह दिव कीया आकरा।
एह दिव सुर नर हूया छइ छार॥ भु.॥

[44]

मइ छडी हो स्वामी थारी आस।
जोगिणि होइ सेवउं बनबास।
कइ तप तपुं बाणारसी।
कइ तउ परबत चडउं केदार।
कइ रें हिमालइ माहिं गिलउं।
कइ तउ झंफाद्यउं गग दुवारि॥ भु.॥

[45]

छंडी हो स्वामी स्वामी म्हे थारी हो आस।
मइला हो थारउ किसउ बेसास।
बांदी करि धणि नवि गिणी।
म्हाकी सगा सुणीजा माहे लोपी छै माम।
जीवत डी मूयां बडइ।
बालुं हो धणी तुम्हारडा दाम॥ भु.॥

[48]

साधण बोलइ सुणि रावका पूत।
ऊलग जाण कउ षरउ कुसूत।
बेटी ब्याही राजा भोज की।
सोलहउ सोनउ काइं करइ छार।
मरण जीवण स्वामी पग तलइ।
कनक कचोलइ उरि धरइ भार।
हेडाऊ का तुरिय जिउं।
हाथ न फेरइ सउ सउ वार॥ भु.॥

[50]

चालियउ उलगाणउ छंडीय काणि।
अरथ दरब थारा जीव की हाणि।
तइ बूडइ स्वामी म्हे बूडी।
तइ गयइ स्वामी ए घर जाइ।
अरथ दरब गाइया रहइ।
जेह नइ सिरिजियउ तेहीज षाइ॥ भु.॥

[52]

सात सहेलीय रही समझाइ।
निगुणी हे गुण हूवइ तउ नाह किउं जाइ।
फूल पगर जिउं गाहिजइ।
चांपीया तेजीय जउ रे उससाइ।
मृग रे चरंता मोहिजइ।
सखी अंचलि बांधियउ नाह किउं जाइ॥ भु.॥

[55]

पंडिया हुं थारी गुणकेरी दासि।
जोसीडा दीह मउडउ परगासि।
मास च्यारि विलंबाविज्यो।
तेतलइ त्यउंगी म्हाकउ प्रीय समझावि।
देसू हाथ कउ मूद्रडउ।
सोवन सींगी कविलीय गाइ॥ भु.॥

[56]

पंडिया तोहि बोलावइ रे राव।
लेइ पतडउ पंडिया राउलइ आइ।
सुदिन सोधे म्हारा जोसियां।
काढि न पतडउ अरु बोलि न साच।
मास च्यारि राजा दिन नहीं।
स्वामी तित्थ तेरस नइ मंगलवार।
इग्यारमउ चंद्रमा देव नइ।
त्रीजउ चंद्रमा घोडिला जोग।
जोगिनी काल भद्रा नहीं।
पुषि नक्षत्र नइ कातिग मास।
तठइ राजा तुम्हे गम करउ।
आगिलउ राजा पुरवइ आस॥ भु.॥

[60]

स्वामी ऊलग जाण की षरीय जगीस।
राजं चलण करि द्यउं तो नइ सीषि।
इण विधि राज माहें संचरइ।
बइठा राजा सभा परधान।
तिणि सुं मीठा बोलिज्यो।
नाई साहुणी नइ घणउ देज्यो मान।
वदडी सरिसउं नवि हसउ।
तठइ राइ बोलाइसी भीतरि गोठि।
राजा जतन करि बोजिज्यो।
कान नइडा अरु नीची द्रेठि॥ भु.॥

[65]

रोवती मेल्हि गउ धण कउ रे नाह।
सूनइ मंदिर दीन्हीय छइ धाह।
साधण कुरलइ मोर जिउं।
पाड पाडोसण बइठी छइ आइ।
जोवउ निसंतान जेउं वइ गया।
सषीय इणि कति नाह कोइ ऊलग जाइ॥भु.॥

[69]

देषि सषी हिव लागउ छइ पोस।
धण मरतीय को मत दीयउ दोस।
दुषि दाधी पंजर हुई।
धान न. भावए तज्या सिरि न्हाण।
छांहडी धूप नू आलगइ।
देषतां मंदिर हुयउ मसांण॥ भु.॥

[71]

फागुण फरहर्‌या कंपिया रूष।
चितइ चकमियउ निसि नींद न. भूष।
दिन रायां रितु पालटी।
म्हाकउ मूरष राउ न देषइ आइ।
जीवउं तउ जोबन सही।
फरहरइ चिहुं दिसि बाजइ छइ बाइ॥ भु.॥

[74]

देषि जेठाणी हिव लागउ छइ जेठ।
मुह कुमलाणा नइ सूक गया होठ।
मास दिहाडउ दारुण तवइ।
धण कउ हे धरणि न लागए पाउ।
अनल जलइ धण परजलइ।
हंस सरोवर मेल्हिउ ठांह॥ भु.॥

[77]

भाद्रवइ बरसइ छइ गुहरि गंभीर।
जल थल महीयल सहु भर्‌या नीर।
जांणि कि सायर ऊलट्यउ।
निसि अंधारीय बीज षिवाइ।
बादल धरती स्यउं मिल्या।
मूरष राउ न देषइ जी आइ।
हूं ती गोसामी नइ एकली।
दुइ दुष नाह किउं सहणा जाइ॥ भु.॥

[80]

सासू कहइ बहू घर माहे आबि।
चंदरइ भोलइ गिलेसी राह।
चंद पूलाणउ बनि गयउ।
दूधु इम उबरइ मजारि कइ फेरि।
पवनहि दीवलउ नवि बलइ।
नाह उडीसइ धण अजमेरि॥ भु.॥

[81]

अस्तीय जनम काइं दीधउ महेस।
अवर जनम थारइ घणा रे नरेस।
रानि न सिरजीय रोझडी।
घणह न सिरजीय धउलीय गाइ।
बनषंड काली कोइली।
हउं बइसती अम्बा नइ चंपा की डाल।
भषती द्राष बीजोरडी।
इणि दुष झूरइ अबला जी बाल॥ भु.॥

[82]

आंजणी काइं नि सिरजीय करतार।
षेत्र कमावती स्यउं भरतार।
पहिरिण आछी लोवडी।
तुंग तुरीय जिम भीडती गात्र।
साईय लेती सामुही।
हंसि हंसि बूझती प्री तणी बात॥ भु.॥

[85]

गोरटी बइठी छइ पंडिया कइ आइ।
कर जोडी अरु लागुं जी पाइ।
राजमती करइ वीनती।
पंडिया कहिज्यो म्हारइ प्रीय नइ जाइ।
डावां हाथ कउ मूंदडउ।
ढलिक करि आवइ हो जींमणी बांह॥ भु.॥

[86]

पडिया जाइ कहे धण का नाह।
तइ मोनइ दीधी थी जीमणी बांह।
चंद सूरिज दुइ साषिया।
पवन पाणी अरु धरती आकासि।
धूप जयायउ थउ बंभणा।
हउ तउ मूवी हो स्वामी तणइ बेसासि॥ भु.॥

[87]

बालुं हो धणीय तुम्हारडउ जांण।
कठिन पयोहरां तिज्यउ परांण।
बालउ जोवन, षिसि गयउ।
जोवन के सिरि बांधिया नेत।
जिण बांधिया रावण षिस्यउ।
त्रिय कारणि राम बांधियउ सूरा सेत॥ भु.॥

[89]

चीरी लिषी धण आपणइ हाथ।
पंडिया हो चालि हेडाऊ कय साथि।
सात सउ कोसकउ गामंतरउ।
पंडिया रूडा चालिज्यो देस की सीम।
तावडउ गिणज्यो न छाहडी।
म्हारी चीरी राषिज्यो जिउं थारउ जीव॥ भु.॥

[92]

जाणियउ हो राजा थाकउ जांण।
दुहुं रे काया मिलउ एक परांण।
सा क्यउं दूरि थी मेल्हियइ।
कुल की रे बेटीय सील जंजीर।
जोवन राषउं मइ चोर जिउं।
पगि पगि तो नइ पहूच रे पाप।
इणि भवि उलगाणउ हूउ।
अवर भवि होयउ कालउ साप॥ भु.॥

[94]

पंडिया तिम कहेज्यो जिम प्रीय नि रिसाइ।
साधण तुझ विण अन्न न षाइ।
कुहाणी फाटउ रे कंचुयउ।
षोपरि फाठउ तु धण केरउ चीर।
जिम दव दाधो लाकडी।
तूं तउ उवइगउ रे आविज्यो नाणदका बीर॥ भु.॥

[96]

बलि कहि गोरी थारा प्रीयरा अहिनाण।
थोडा थोडा म्हांनइ दे सहिनाण।
किण उणहारइ सारिषउ।
दाढीय रायकइ भमर भमाइ।
मस्तक नाहे केवडउ।
माहिलइ कीइय जोमणी आंषि॥ भु.॥

[105]

पंडिया गोरडी तइ किण परि दीठ।
मोती परोवती गउषि बईठि।
चित चोषइ मन ऊजलइ।
पग दुय अंतर दीयउ रे संदेस।
जउ रे तू आज न चालीयउ।
तउ धण हीयडलउ फूटि मरेसि॥ भु.॥

[108]

रहि रहि बहिनडी तूं मांम म हारि।
म्हारइ सहस अस्त्रियां घरि नारि।
एक एकां थी आगली।
एक अस्त्री छइ म्हाकइ रतन संसारि।
प्रेम पियारी बालही।
बाइ उणरउ पीहर छइ मांडव धार॥ भु.॥

[113]

सांभलउ जोगी कहइ नरनाथ।
कोमल पदम छइ धण केरइ हाथ।
मूंगफली जिसी आंगुली।
उणरा कठन पयउहर काजली रेह।
बोलती बोल छइ आकुली।
दांत दाडिम धण चीता कय लंकि॥ भु.॥

[114]

उणय अहर फडूकइ लहलहइ बांह।
कइ लेष मोकलइ कइ मिलइ नाह।
अंग फडूकइ तन लवइ।
उणि रइ कडिया चीर पुणि ना रहइ ठाइ।
मो मन अधिक उमाहियउ।
जाणउ आज मिलेस्यइ सही सइंभरि राइ॥ भु॥

[119]

जोगी कहइ सुणि मोरी माइ।
दिन तीजे आवइ घरि राइ।
हमही देहि बधामणी।
दीधा मोती अरथ भंडार।
दीधा हीरा पाथरी।
काल्हि आवइ राजा एतीय बार॥ भु॥

[124]

मुलकइ हसइ आलिंगन देइ।
पलिंग न बइसइ अनइ पान न लेइ।
ऊभीय देइ उलंभडा।
आंगुली तोडइ छइ मोडइ छइ बांह।
नाह भरोसउ न करूं।
तइं तउ बार बरिस किउं गेल्हीय नाह॥ भु॥

[125]

टसकला मुसकला मोनइ न सुहाइ।
धण कइ हियडलइ हाथ म लाइ।
लाज नही प्रीय निरममा।
म्हाकउ वारयउ तूं किउं ऊलगइं जाइ।
बालउ रे वैस न देषही।
हिवइ निगुणा नाह मोहि किसइ मेलाहि॥ भु॥

[बीसलदेव रास—सम्पादक, डॉ. माताप्रसाद गुप्त तथा श्री अगरचंद नाहटा]

muhotes.in

शब्दार्थ : (6) अगवानि < अग्रायन [?] - आगे आकर मिलने वाले। विंद < वद्य [?] - वर। (7) पंडिय < पंडित। रावल < राजकुल - राजभवन। जोसी < ज्योतिषी। (8) बंभण < ब्राह्मण। पषाल < प्रक्षालय - धोना। (11) साह < साधय - प्रसन्न करना। माम < ममत्व। (16) गोवल < गोकुल। परतिष्या < प्रत्यक्ष। (19) उछाह < उत्साह। मांडहउ < मंडप। (26) बार < द्वार! दीह < दीवस। (28) भूआल < भूपाल। थांण < स्थान। (29) सारिष < सदृश। (30) ... (31) जइ < यदि। आहेड < आखेट। वि < द्वय = दो। (32) समर < स्मृ = स्मरण करना। (34) परिहरण < परिदान। लोवडी < लोमपटी। झीण < क्षीण। धण < धन्या। अहर < अधर। (35) चमक्किअ < चमत्कृत। ऊलग < ओलग्गा < अव+लग् = सेवा, चाकरी। (36) ऊभीय < ऊर्ध्वित = खड़ी। माछ < मत्स्य। (38) काल्ह < कल्ल < कल्य = कल। उलगाणउ < अवलग्न = सेवक, चाकर। सवालषउ < सपादलक्ष। (39) ऊलग < ओलग < अव = लग् = सेवा, चाकरी। लूण < लवण। (41) गहिली < ग्रस्ता [?] - आविष्ट, पागल, भ्रांतचित्त। कूड़ < कूट। (42) उलगाणा < अवलग्न = सेवक, चाकर। धण < धन्या। बाँझ < बंध्या। (43) दिव < दिव्य। आकर < अग्र। छार < क्षार। (44) झंफ < झम्प - कुदान। दुवार < द्वार। (45) वेसास < विश्वास। सुणीजा < सु+निज - आत्मीय। माम < ममत्व। (48) ऊलग < ओलग्ग < अव+लग्ओ - सेवा, चाकरी। कुसूत < कुसूत्र। छार < क्षार। कचोल < कच्चोल = कटोरा। < हेडा [दे.] - घटा, समूह। तुरिय < तुरंग। (50) ऊलगाणउ < अवलग्न = चाकर, सेवक। अरथ < अर्थ। दरब < द्रव्य। (52) नाह < नाथ - स्वामी। (55) पंडिय < पंडित। जोसी < ज्योतिषी। दीह < दिवस। मउडउ < मंद(?) = शनै:।* मुंद्रडा < मुद्रा। कविलीय < कपिला। (56) रावल < राजकुल = राजभवन। पतडा < पत्र = पञ्चाङ्ग। (60) ऊलग < ओलग्गा < अव+लग् = चाकरी, सेवा। जगीस < जिगीषा = इच्छा। साहणी < साहणी < साधनिक = सेनापति। गोठि < गोष्ठी। देठि < दृष्टि। (65) चाह [दे.] = पुकार, चिल्लाहट। पाड < पाडय < पाटक = मुहल्ला। ऊलग < ओलग्गा < अव+लग् = सेवा, चाकरी। (69) को < कः = कोई। मसांण < श्मशान। (71) रूष < रुक्ख < वृक्ष। चमक < चमक्कि < चमत्+कृ। राय < राज् < चमकना, शोभित होना। सही < सखी। (74) दिहाडा < दिवस। तव < तप्। ठांइ < स्थान। (77) भाद्रवइ < भाद्रपद। खिव < क्षिप् = फेंकना। (80) गिल - निगलना, भक्षण करना। पुल् - विशाल, या उन्नत ओना। मंजारि < मार्जारी। दीवल < दीप। वल < ज्वल - जलना। (81) रोझ < ऋश्य = नीलगाय। धण - घना वन। द्राष < द्राक्षा! बीजोर < बीजपूर। झूर < ज्वल् [?] = सूकना, चिन्ता करना। (82) सिउं < समं - साथ। पहिरिण < परिधान। लोवडी

* दे. 'मुग्धावबोध औक्तिक' के अन्त में दिए हुए 'औक्तिक पदानि' शीर्षक के अन्तर्गत मुडइ : प्राचीन गुजराती गद्य सन्दर्भ (संपा. मुनि जिन विजय) पृ. 189

< लोम = पटी। भीड [दे.] = भिड़ना, मुठभेड़ करना। (85) मूंदड़ा < मुद्रा। (86) साषिया < साक्षी। बंभणा < ब्राह्मण। बेसास < विश्वास। (87) वाल < ज्वाल् = जलाना। जाण < ज्ञान। षिस [दे.] = सरकना, खिसकना। नेत < नेत्र = रस्सी। (89) चीरी < चिट्ठिय < स्थिति। हेडा [दे.] = घटा, समूह। ताव < ताप। छाह < छाया। (92) जाण < ज्ञान। अवर < अपर। (94) कंचुय < कंचुक = चोली। दाधी < दग्ध। (96) सारिष < सदृश। तेजी < ताजी [फा.] = घोड़ा। (105) गउष < गवाक्ष। (108) माम < ममत्व। आगली < अग्र। वालही < वल्लभा। बाई < बाइआ [दे.] = माँ। पीहर < पितृगृह। (113) पयउहर < पयोधर। चीता < चित्रक। (114) लव = अंकुरित होना, पल्लवित होना। मोक < मुक्क < मूच् = छोड़ना, देना। कडि < कटि। सही < सखी। (119) वार < वेला। (124) मुलक < मुकुल। पलिंग < पर्यङ्क। ऊभीय < ऊर्ध्वित = उठी हुई, खड़ी। उलंभड्ड < उपालम्भ। (125) ऊलग < ओलग्गा < अव = लग्ओ = चाकरी, सेवा वेस < वयस्।

munotes.in

इकाई - २ कबीर

इकाई - ३ सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर

लेखक - डॉ. अनंत द्विवेदी

munotes.in

इकाई-२

कबीर

इकाई की रूपरेखा :

२.० इकाई का उद्देश्य
२.१ प्रस्तावना
२.२ कबीर
२.२.१ कबीर : परिचय
२.२.२ कबीर की भक्ति-भावना
२.२.३ दार्शनिक विचार एवं रहस्यवाद
२.३ सारांश
२.४ वैकल्पिक प्रश्न
२.५ लघु-उत्तरीय प्रश्न
२.६ बोध प्रश्न
२.७ अध्ययन हेतु सहायक पुस्तकें

२.० इकाई का उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप जान सकेंगे कि,

- कबीर के जीवन के प्रमुख बिंदु क्या है,
- कबीर-काव्य की संवेदनात्मक विशेषताएँ क्या है,
- संत काव्यधारा में कबीर का महत्व क्या था।

२.१ प्रस्तावना

कबीर अनपढ़ थे पर अज्ञानी नहीं थे। उन्होंने स्वानुभूति से व्यवहारिक ज्ञान अर्जित किया था और वही उनकी कविता का सबसे सुंदर पक्ष है। सत्संग ने उन्हें दार्शनिक ज्ञान दिया और स्वानुभूति के बल पर उन्होंने उसे विशिष्ट रूप प्रदान किया। इस इकाई में कबीर के व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध पक्षों का अध्ययन और विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। इसके अध्ययन से छात्र निर्गुण संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीर के काव्य में निहित विभिन्न पक्षों का परिचय प्राप्त करेंगे।

mumotes.in

२.२ कबीर

२.२.१ कबीर : परिचय

कबीर के जीवन के बारे में निश्चित रूप से कुछ कह पाना अत्यंत कठिन है। उनके जीवन के बारे में बहुत कम प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध है फिर भी विद्वानों ने विभिन्न स्त्रोतों से उनके जन्म, मृत्यु और जीवन संबंधी अन्य बातों का निर्धारण करने की चेष्टा की है। कबीर के संबंध में जानकारी देने वाले स्त्रोतों को अंत:साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य और जनश्रुतियों के रुप में विभक्त कर सकते हैं।

बहिर्साक्ष्यों के रूप में कबीर के परवर्ती संत कवियों एवं अन्य लेखकों के साहित्य को रखा जा सकता है। इनमें नाभादास कृत 'भक्तमाल', संवत १७०२ में प्रियादास द्वारा लिखी गई 'भक्तमाल की टीका', संत रविदास जी की वाणी, संत गरीबदास जी की वाणी, धर्मदास जी का 'निर्भय ज्ञान', गुरुग्रंथसाहब, अनंत दास कृत 'कबीर साहब की परिचई', संत तुकाराम की रचनाएं, संत पीपा की वाणी, तथा कुछ कबीरपंथी ग्रंथ जैसे 'भवतारण', 'अमर सिंह बोध', 'गोरख कबीर पुष्टि', 'कबीर चरित्रबोध' आदि। उर्दू और फारसी के ग्रंथ भी कबीर के संबंध में जानकारी देते हैं, जिनमें प्रमुख हैं - मौलवी गुलाम सरवर कृत 'खजीन अत्तुल अफ़सिया', 'दबिस्तान ए मुजाहिद', मौलवी नसीरुद्दीन कृत 'ताज़कीरुल फुकरा', 'आईने अकबरी' आदि। आधुनिक काल में हिंदी के कुछ विद्वानों ने भी कबीर के जीवनवृत्त का सही विवेचन प्रस्तुत करने की चेष्टा की है, जिनमें डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल, डॉ. राम प्रसाद त्रिपाठी, श्री चंद्रबलि पांडेय, डॉ. मोहन सिंह, डॉ. श्याम सुंदर दास आदि उल्लेखनीय हैं।

अंत:साक्ष्य के रुप में कबीर साहित्य में पाई जाने वाली जानकारी समाहित है जिसमें उनका समय, माता-पिता, गुरु, जाति, व्यवसाय, स्त्री, पुत्र-पुत्री आदि के संबंध में कुछ जानकारी मिलती है। कबीर के संबंध में लोक में बहुत सी जनश्रुतियाँ भी प्रचलित हैं जिनसे कबीर के संबंध में कुछ बातें पता चलती हैं। पर यह बातें दी गई जानकारी को धूमिल करने का काम भी करती हैं। अत: बहिर्साक्ष्यों एवं अंत:साक्ष्यों के रूप में जो स्त्रोत उपलब्ध हैं, उनसे कबीर के जीवन के संबंध में जो जानकारी प्रामाणिक रूप में मिलती है उसका उल्लेख निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है -

जन्म समय - कबीर दास जी के जन्म समय के संदर्भ में अंत:साक्ष्य एवं बहिर्साक्ष्यों में कई जगह संकेत प्राप्त होते हैं अंत:साक्ष्य के रुप में निम्नलिखित पंक्तियां देखी जा सकती हैं -

गुरु परसादी जैदेव नामा।
भगति के प्रेम इन्हहि हे जाना।।

इन पंक्तियों से यह पता चलता है कि कबीर दास जी का जन्म नामदेव और जयदेव के बाद हुआ था।

बहिर्साक्ष्यों में 'आईने अकबरी' में कबीरदास जी का उल्लेख मिलता है। जिसका रचनाकाल सन् १५९६ माना जाता है। अर्थात कबीरदास जी की सन् १५९६ के पहले ही मृत्यु हो चुकी थी। एक अन्य ग्रंथ 'खदीन अतुल असफिया' के अनुसार उनकी जन्मतिथि सन् १५९४ में निर्धारित होती है जो कि ठीक नहीं हैं। इसके अतिरिक्त कबीरपंथी ग्रंथ 'कबीर चरित्र बोध' में भी उनकी जन्मतिथि का उल्लेख है, जिसके अनुसार महात्मा कबीर का अवतार सन् १३९८ में हुआ था। यह तिथि सत्य के काफी निकट है परंतु विद्वानों ने इस ग्रंथ को सांप्रदायिक मानकर इसकी प्रामाणिकता स्वीकार करना ठीक नहीं समझा। संत प्रियादास ने 'भक्तमाल की टीका' में कबीरदास जी को सिकंदर लोदी का समकालीन माना है। जनश्रुतियों से भी यह उल्लेख प्राप्त होता है। भक्तमाल के रचयिता नाभादास जी ने रामानंद के विषय में जो छप्पय लिखा है उसमें उनके शिष्यों में कबीर का नाम भी गिनाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कबीरदास जी भक्तमाल की रचना से पहले उत्पन्न हुए थे। अनंत दास जी ने अपने ग्रंथ 'कबीर साहब की परिचई' में उन्हें काशी का जुलाहा बताया है और उनके गुरु का नाम रामानंद। उनके अनुसार बघैल राजा वीर सिंह कबीर के समकालीन थे तथा सिकंदर शाह का काशी में आगमन और कबीर से मिलना हुआ था। धर्मदास के ग्रंथ 'निर्भय ज्ञान' में एक घटना का उल्लेख मिलता है कि कबीर दास जी की मृत्यू के पश्चात उनकी मृत देह को प्राप्त करने के लिए वीर सिंह बघेला और बिजली खाँ में युद्ध हुआ और जब शव के ऊपर पड़ी चादर को उठाया गया तो कुछ फूल ही वहां मिले। जिनका हिंदुओं और मुसलमानों ने बराबर का बंटवारा कर लिया। 'गुरुग्रंथसाहब' में प्राप्त विवरणों के अनुसार कबीरदास जी को उच्च कोटि का संत महात्मा सिद्ध करते हैं। इस प्रकार कबीरदास जी के जन्म और समय के बारे में काफी विरोधाभासी तथ्य देखने को मिलते हैं। अंततः आधुनिक विद्वानों ने काफी विचार-विमर्श के पश्चात कबीरदास जी का जन्म सन् १३९८ ई. होना स्वीकार किया है।

माता पिता - कबीर के माता-पिता कौन थे? इस संबंध में भी विद्वानों में काफी मतभेद हैं। कुछ जनश्रुतियाँ और प्राचीन ग्रंथ कबीर की मानवीय उत्पत्ति न मानकर दैवी उत्पत्ति मानते हैं। जबकि कुछ अन्य विद्वान यह मानते हैं कि कबीर किसी विधवा ब्राह्मणी अथवा ब्राह्मण कन्या के पुत्र थे, जिसे सामाजिक अवमानना के डर से जीवित ही नदी में प्रवाहित कर दिया गया था। इन विद्वानों के अनुसार कबीर को नीरु और भीमा नामक जुलाहा दंपति ने पाल-पोस कर बड़ा किया था। कबीर पर अत्यंत शोधपूर्ण ढंग से अध्ययन करने वाले विद्वान गोविंद त्रिगुणायत कबीर को नीरु और नीमा का औरस पुत्र मानते हैं, जिसकी पुष्टि के लिए वे अंतःसाक्ष्यों से कई प्रमाण भी प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार 'कबीर की हिंदू विचारधारा को स्पष्ट करने के लिए उन्हें विधवा ब्राह्मणी तथा ब्राह्मण कन्या आदि का पुत्र कल्पित किया जाने लगा था।' इस तरह कबीर के माता पिता कौन थे? यह भी मतभेद का विषय हैं।

गुरु - जन्म एवं माता-पिता की भांति कबीर के गुरु कौन थे, इस संबंध में भी विद्वानों में मतभेद है। डॉ. मोहन सिंह के अनुसार कबीर का कोई मानव गुरु नहीं था और उन्होंने किसी मनुष्य को अपना गुरु नहीं बनाया था। कबीर की रचनाओं में पाए जाने वाले गुरु शब्द का अर्थ वे ब्रह्म से ग्रहण करते हैं। कुछ दूसरे विद्वानों के अनुसार कबीर शेख तकी के मुरीद थे। मेलकम, वेस्कर्ट और डॉ. राम प्रसाद त्रिपाठी आदि विद्वानों ने प्रमाण के रूप में गुलाम सरवर की 'खदीन अतुल असफिया' ग्रंथ से प्रमाण दिया है। इसके अतिरिक्त एक तीसरा मत भी है जो कबीर को रामानंद का शिष्य मानता है। इन विद्वानों में 'दबिस्तान ए तवारीख' के लेखक मोहसीन फ़ानी, 'भक्तमाल' के रचयिता नाभादास, भक्तमाल के टीकाकार प्रियादास तथा 'तज़कीरूल फुकरा'

के लेखक मौलवी नसीरुद्दीन प्रमुख हैं। हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. रामकुमार वर्मा, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. श्यामसुंदर दास और डॉ. पीतांबरदत्त बड़थ्वाल जैसे विद्वान इसी मत का समर्थन करते हैं।

मृत्यु एवं मृत्युस्थान - कबीर की मृत्यु कब और कहां हुई, इस संबंध में भी कई मत हैं। कुछ विद्वान संवत् १५०५, कुछ संवत् १५७५, कुछ १५६९ तथा १५४९ भी मानते हैं। परंतु यह सभी मत निश्चित प्रमाण न होने के कारण मतभेद का ही विषय हैं। डॉ. गोविंद त्रिगुणायत के अनुसार "'अनंतदास कि परिचई' के अनुसार कबीर ने १२० वर्ष की आयु पाई थी। कबीर ऐसे महात्मा है की इतनी आयु होना आश्चर्यजनक भी नहीं है। हम ऊपर की जन्मतिथि संवत १४५५ निश्चित कर चुके हैं। १४५५ में १२० जोड़ देने पर उनकी मृत्युतिथि १५७५ वाली तिथि ही प्रामाणिक माननी चाहिए। इससे कबीर को सिकंदर लोदी, स्वामी रामानंद तथा नानक गुरु के समकालीन मानने में बाधा नहीं पड़ती है।" इस प्रकार डॉ. गोविंद त्रिगुणायत ने तर्क प्रस्तुत करते हुए कबीर की मृत्युतिथि संवत १५७५ निश्चित की है, जिसे ज्यादातर विद्वानों ने स्वीकार भी किया है। इसी भांति कबीर के मृत्यु स्थान के संदर्भ में भी कई मतभेद हैं। कुछ विद्वान उनकी मृत्यु उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले में स्थित मगहर नामक स्थान को मानते हैं। जनश्रुतियों के अनुसार मगहर में मृत्यु होने से नर्क की प्राप्ति होती थी और कबीर ने इस धारणा को चुनौती देकर मगहर को ही अपना मृत्यु स्थान निश्चित किया था। ज्यादातर विद्वान अब इस मत पर सहमत हो चुके हैं।

इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक कबीर के जीवन के संबंध में हमें विभिन्न अनुमानों का आश्रय लेना पड़ता है। परंतु उनका साहित्य एक महत्वपूर्ण देन के रुप में आज भी हमारे बीच है और सामाजिक क्रांति की नई-नई परिभाषाएं गढ़ रहा है।

२.२.२ कबीर की भक्ति-भावना :

कबीर निर्गुण भक्ति धारा के प्रतिनिधि कवि हैं। निर्गुण भक्ति का आदिस्त्रोत भारत के प्राचीन वांग्मय में भी मिलता है। आदिग्रंथ ऋग्वेद के नासदीय सूक्त तथा पुरुष सूक्त को निर्गुण भावना का समर्थक बताया जाता है और इन्हें निर्गुण भक्ति के प्रमाण रूप में स्वीकार किया जाता है। ऋग्वेद, यजुर्वेद के अनेक मंत्रो को उद्धरत करते हुए कहा गया है कि सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, अजर, अमर, नित्य, पवित्र, शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव ईश्वर निराकार और निर्गुण हैं।

वेदों के बाद उपनिषदों के ब्रह्म चिंतन के आधार पर भी विद्वानों ने निर्गुण भक्ति को स्वीकार किया है। उपनिषदों में वर्णित ब्रह्म वही है जो वैदिक ऋचाओं का पुरुष है। मध्यकालीन निर्गुण भक्ति के विकास को कुछ विद्वानों ने बौद्ध मत की वज्रयानी और सहजयानी शाखा से जोड़ने का आग्रह भी व्यक्त किया है। सहजयानी सिद्धों की परंपरा भारत में सातवीं शताब्दी से बारहवीं शताब्दी तक कई प्रांतो में रही है। इसी के साथ नाथ संप्रदाय का भी दसवीं-ग्यारहवीं शताब्दी से इस देश के एक बड़े भूभाग पर प्रभाव रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, राहुल सांकृत्यायन आदि विद्वानों ने सिद्धों और नाथों की वाणी का प्रभाव इन संत कवियों पर स्वीकार किया है।

हिंदी की निर्गुण काव्यधारा के मूलस्त्रोत का प्रश्न अत्यंत जटिल है। निर्गुण भक्ति साहित्य का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने कबीर आदि निर्गुण संत कवियों की रचनाओं में इस्लामी एकेश्वरवाद, बौद्धों का शून्यवाद, शंकराचार्य का अद्वैतवाद, शैवों का अद्वैतवाद, रामानंदी विशिष्टाद्वैतवाद, सूफियों की प्रेम साधना का रहस्यवाद, वैष्णव भक्ति का प्रपत्तिवाद, योग, प्रतिपादित हठ साधना मार्ग आदि विभिन्न तत्वों का प्रभाव स्वीकार किया है।

कबीर की भक्ति में प्रेम और विरह का अद्भुत रूप देखने को मिलता है। भक्ति तत्व का विवेचन करने वाली प्राय: सभी अवधारणाओं और परिभाषाओं में प्रेम तत्व को अत्यंत महत्व प्रदान किया गया है। नारद भक्ति सूत्र में नारद ने 'सात्वस्मिन् परम प्रेम रुपा' कहकर उसे स्पष्ट रूप से प्रेम विशिष्ट घोषित किया है। इसी प्रकार व्यास, गर्ग, शांडिल्य, रामानुजाचार्य एवं भागवत् में भी प्रेम तत्व को विशिष्ट महत्व दिया गया है। भक्ति क्षेत्र में कबीर पर नारद का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और उन्होंने बार-बार नारदीय भक्ति का उपदेश दिया है।

नारद के अतिरिक्त कबीर पर सूफियों का भी गहरा प्रभाव पड़ा है। उनकी प्रेम भावना सूफियों के इश्क और खुमार के असरात से भी सराबोर है। कबीर ने कई स्थानों पर प्रेम पियाले तथा इससे उत्पन्न ख़ुमार की चर्चा की है। प्रेम को रसायन रूप में कल्पित करने की इच्छा उनमें सूफियों के अनुकरण पर ही जागृत हुई होगी। कबीर की भक्ति का यह मधुरतम प्रेम तत्व ही प्रियतम अर्थात ब्रह्म के साक्षात्कार का द्वार खोलता है। इसीलिए वे कहते हैं, 'ममिता मेरा क्या करै प्रेम उघाड़ी पौलि, दर्शन भया दयाल का सूल भई सुख सौड़ी।'

भक्ति के लिए कबीर ने प्रेम की अनन्यता, त्याग और तपस्या को विशेष महत्व दिया है। ऐसी भक्ति को प्राप्त करके साधक राग-द्वेष से मुक्त हो जाता है और सांसारिक वस्तुओं में भी उसकी कोई रूचि नहीं रहती। विषय-त्याग, कुसंग-त्याग, भजन-कीर्तन आदि से तथा संतों-महात्माओं की कृपा प्राप्त करके भक्ति के माध्यम से ईश्वर की प्राप्ति की जा सकती है। कबीर ने इन सभी का महिमा गान अपनी कविता में किया है - 'पुत्र कलत्र लच्छमी माया इहै तजौ जिय जानी रे, कहत कबीर सुनहु रे संतहु मिलिहै सारंग पानी रे।'

भक्ति में विरह का विशिष्ट महत्व है। नारद भक्ति सूत्र में विरह तत्व को विशेष महत्व दिया गया है। दूसरी तरफ सूफियों की प्रेम भावना में भी विरह की व्यंजना विशेष रूप से हुई है। कबीर पर नारद और सूफीमत दोनों का ही प्रभाव देखने को मिलता है एवं उनकी कविता में विरह की मार्मिक अभिव्यंजना देखने को मिलती है। 'गुरु दाधा चेला जल्या विरह लागी आगि, तिणका बपुड़ा ऊबरया गलि पूरै के लागि।' इस तरह कबीर भी विरह को अपने गुरु की देन मानते हैं।

कबीर ने निष्काम भक्ति को अत्यंत महत्व दिया है और उनका मानना है कि जब तक शरीर कामनाओं से युक्त होता है, तब तक दास्यभक्ति निष्फल रहती है 'जब तक भगति सकामता तब तक निष्फल सेव।' भागवत की निर्गुण भक्ति के समान कबीर की भक्ति भी त्रिगुणातील है और इन गुणों से ऊपर उठने पर ही ईश्वर की प्राप्ति होती है। 'चौथे पद को जो नर चीन्है तिनहिं पर पद पाया', अर्थात त्रिगुणातील होकर जब साधक चौथे पद में पहुंचता हैं, तभी परम पद अर्तात ईश्वर की प्राप्ति का अधिकारी होता है।

कबीर ने भक्ति में सदाचरण को विशेष महत्व दिया है। इस संबंध में नारद भक्ति सूत्र में दिए गए निर्देशों का उल्लेख कबीर में देखने को मिलता है। कबीर ने भी अभिमान, दम्भ जैसे दुर्गुणों को त्यागने और दृष्ट संगति से बचने का परामर्श दिया है। साथ ही, माया रूपी स्त्री की निंदा तो उन्होंने खुलकर की है, 'नारि नसावै तीन सुख जा नर पासै होय, भगति मुकति निज ग्यान में पैसि न सकई कोय'। इस तरह कामिनि को भक्ति के मार्ग में कबीर ने बाधक माना है। कामिनी के साथ-साथ कंचन अर्थात धन प्राप्ति कि लालसा को भी कबीर भक्ति के मार्ग में बाधक मानते हैं। साथ ही कुल, कुसंग, लोभ, मोह, मान, कपट, आशा और तृष्णा आदि भी भक्ति के मार्ग में बाधक हैं।

कबीर की भक्ति प्रपत्ति भाव की भक्ति है। प्रपत्ति का रूढ़ अर्थ है - आत्मनिवेदन। भक्ति के क्षेत्र में प्रपत्ति शब्द शरणागति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भक्तों द्वारा सब धर्म और साधनों को छोड़कर भगवान की शरण में जाना ही प्रपत्ति है। रामानुज की शिष्य परंपरा में होने के कारण कबीर ने प्रपत्ति मार्ग को पूर्ण रूप से अपनाया है, 'जनकबीर तेरी सरन आयो राखि लेहु भगवान्'। इस तरह अपनी रचनाओं में उन्होंने भगवान की शरण में जाने का उपदेश दिया है। प्रकृति की भावना ही कबीर की भक्ति भावना का प्राण तत्व है। इस भक्ति में जाति-पाति की बाधकता स्वीकार्य नहीं है। कबीर में प्रपत्ति के सभी अंगो का विकास पाया जाता है, जैसे - वे बातें करना जो भगवान के अनुकूल हों, ऐसे कार्य न करना जिससे ईश्वर अप्रसन्न हो, ईश्वर की शक्ति पर विश्वास करना, एकांत में उसके गुणों का वर्णन करना अर्थात ध्यान करना, अपने आप को पूर्णतया उसी के अधीन कर देना, दीनता अर्थात आत्मनिवेदन और ईश्वर की महानता आदि का वर्णन। कबीर में प्रपत्ति के इन सभी अंगो का वर्णन देखने को मिलता है।

जहां तक भक्ति के भेदों के वर्णन का प्रश्न् है, भागवत में भक्ति के नव प्रकार बताए गए हैं। उनका वर्णन तो कबीर के यहां नहीं है, परंतु नारद भक्ति सूत्र में भक्ति के जितने भी भेद हैं, वे सब भावभक्ति के हैं और उन सभी का वर्णन कबीर के यहां मिलता है - गुणमहात्म्यसक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, सख्यासक्ति, कांतासक्ति, वात्सल्यासक्ति, तन्मयतासक्ति, परम बिरहासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति आदि।

किसी भी साधना के लिए साधनों की अनिवार्यता होती है। भक्ति को सादने के लिए कबीर के यहां जिन साधनों की चर्चा मिलती हैं उनमें मानव शरीर, गुरुसेवा, भगवान की कृपा, नाम, जप, स्मरण, कीर्तन आदि तथा सत्संगति का विशेष महत्व है। कबीर का यह दृढ़ विश्वास है कि मानव शरीर पाकर जो भगवान को विस्मरण कर देते हैं, उन्हे अंत में बहुत पश्चाताप करना पड़ता हैं, 'मानस देही पाड़ के हरि बिसरै तो फिरि पछताई'। इस तरह कबीर भक्ति के लिए सबसे पहले तो मानव शरीर को ही साधन मानते हैं। भक्ति की साधना के लिए मानव शरीर सर्वश्रेष्ठ है।

भक्ति के दूसरे साधन के रूप में गुरु-सेवा का उल्लेख कबीर के यहां मिलता है। मनुष्य संसार में आते ही माया के इंद्रजाल में फंस जाता है। लोक और वेद आदि में पड़कर वास्तविक सत्य को भूल जाता है। उसकी इस अज्ञानता को दूर करने में गुरु की बड़ी भूमिका होती है। वह गुरु ही है जो ज्ञान, प्रेम, विरह तत्वों को देकर अपने शिष्य का उद्धार करता है। सच्चे गुरु की प्राप्ति अनन्य और निष्काम गुरु-सेवा से ही संभव है। इस तरह गुरु-सेवा भक्ति का अत्यंत आवश्यक साधन है। गुरु सेवा के साथ भक्ति प्राप्त करने के लिए भगवत् कृपा भी

आवश्यक है। बिना भगवत् कृपा के गुरु की प्राप्ति नहीं हो सकती। इसी तरह नाम, जप, स्मरण तथा कीर्तन आदि को कबीर ने धर्म-साधना तथा भक्ति-साधना के अनिवार्य तत्वों के रुप में स्वीकार किया है, कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्मा महेस। राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेश।।

उपर्युक्त सभी के अतिरिक्त सत्संगति को भी भक्ति का प्रमुख साधन माना जाता है और इसे कबीर ने विशेष महत्व दिया है। साधु संगति को कबीर अत्यंत महत्वपूर्ण मानते थे, 'कबीर संगति साधु की कदे न निष्फल होय'। इन साधनों के अलावा कबीर में श्रद्धा, विश्वास, सदाचरण, सत्याचरण और निष्कपटता आदि अन्य सामान्य साधनों का भी उल्लेख मिलता है।

वस्तुतः कबीर की भक्ति का स्वरूप स्वानुभूति से प्रेरित है। उसमें विभिन्न धर्मो और संप्रदायों का प्रभाव भी सम्मिलित है उसमें वाह्य विधि-विधानों और आचरणों का निषेध है। भाव-भक्ति का जो संदेश उन्होंने अपने गुरु रामानंद से पाया था, उसे उन्होंने चारों ओर प्रसारित किया अपने भक्ति मार्ग में उन्होंने जाति-पाति के सारे बंधनों को तोड़ दिया, जिससे उसके प्रसार में अत्यधिक सहायता मिली। कबीर की भक्ति जहां एक तरफ नारद भक्ति सूत्र से प्रभावित है, वहीं उस पर भागवत और सूफी संप्रदाय का भी गहरा प्रभाव है। उन्होंने अपनी भाक्तिं में प्रपत्ति पर विशेष बल दिया और सदाचरण उनकी भक्ति का मूल आधार है।

२.२.३ दार्शनिक विचार एवं रहस्यवाद :

कबीर मूलतः साधक और विचारक थे। उनकी आध्यात्मिक चेतना ने उन्हें दार्शनिक भी बना दिया है। उनका दर्शन स्वानुभूति से उत्पन्न है। वाचिक परंपरा से ग्रहण किए गए अनेकों दर्शनों के प्रभावों को कबीर ने आत्मसात किया है। अधिकांश आलोचक उन्हें अद्वैत वेदांत का समर्थक मानते हैं किंतु योग, सांख्य एवं बौद्धिक चिंतन की छाप उनकी अभिव्यक्ति में देखने को मिलती है।

बौद्धो का 'स्वप्नवाद', 'क्षणिकवाद' का प्रभाव कबीर की वाणी में देखने को मिलता है। वे अद्वैत विचारधारा की और झुके अवश्य हैं किंतु उनके चिंतन को स्वयं उनकी अनुभूति ने रूपायित किया है। उनके तत्व चिंतन में जहां बौद्धों एवं नाथ योगियों का प्रभाव है, वहीं विशिष्ट अद्वैतवादियों का भक्ति प्रेमतत्व भी उनके चिंतन में गृहीत है। कबीर के अद्वैत में आगमिक या तंत्र का तत्वचिंतन एवं सूफियों कि प्रेम भावना भी प्रकट हुई है। स्वयं के अनुभव से रुप ग्रहण करने के कारण कबीर का दर्शन केवल मात्र वाग्विलास नहीं है। उनका दर्शन शास्त्रों पर आश्रित और पूर्वाग्रह से भी ग्रसित नहिं है क्योंकि वे सत्य निर्धारण में स्वानुभूति को ही आधार मानते हैं। कबीर के दार्शनिक चिंतन को उपनिषदों की जिज्ञासा परंपरा के विकास क्रम में देखा जा सकता है।

कबीर के दार्शनिक विचारों को उनके द्वारा व्यक्त किए गए परमतत्व या ब्रह्म, माया, जगत, जीवात्मा, रहस्य दर्शन के द्वारा अभिव्यक्त किया जा सकता है -

ब्रहम - जगत और उसके कर्ता के प्रति कौतुहलपूर्ण जिज्ञासा भारतीय दर्शन में प्रारंभ से ही रही है। यह कर्ता ही कबीर के यहां ब्रहम है। कबीर का ब्रहम स्वरूप प्रतिपादन की दृष्टि से औपनिषदिक ब्रहम, योगियों के द्वैत-अद्वैत विलक्षण प्रकाश स्वरूप, और सूफियों के नूरवाद -

शून्यवाद से प्रभावित है। क्योंकि कबीर के ब्रहमवाद में भावना मूलकता एवं बुद्धि मूलकता दोनों है। कबीर का ब्रहम न तो एक मात्र निर्गुण है और न सगुण। इस विलक्षण परमतत्व को वाणीबद्ध करने के लिए कबीर को अभिव्यक्ति की विभिन्न पद्धतियां अपनानी पड़ी हैं। स्वानुभूति से उद्भूत इस तत्व को अभिव्यक्त करने के लिए कबीर ने प्रतीकों, रूपकों, दृष्टांतों आदि को माध्यम बनाया है, 'पंडित मिथ्या करहु बिचारा, न वह सृष्टि न सिरजनहारा। थूल स्थूल पवन नहिं पावक, रवि ससि धरनि न धीरा।' उस परमतत्व का निर्वचन संभव नहीं है। वाणी से परे और युक्ति-प्रमाण का विषय न होने के कारण वह अकथ्य है। उसका अन्वेषण स्वांत: में ही संभव है। वह अंतस्थ और वाह्यस्थ दोनों नहीं है। वह तो सहज निरंतर है। उसके न मुख है, न मस्तक है, न रूप है और न कुरुप बल्कि फूल कि सुगंध से भी पतला है। ऐसा वह विलक्षण है, 'जा के मुख माथा नहीं, नाहीं रूप करुप। पुहुप बास से पातरा, ऐसा तत्व अनूप।'

कबीर परम तत्व को शब्द रूप में अभिहित बताते हैं। शब्द ब्रहम ही इस जगत का एकमात्र कारण है 'शब्द काया जग उतपानी, शब्दै केरि पसारा।' शब्द ब्रहम ही इस जगत का एकमात्र कारण है। जैसे बीज का व्यक्त रूप वृक्ष है, उसी प्रकार ब्रहम का ही विवर्त रुप यह जगत है। सारा विश्व इसी परमतत्व में समाया हुआ है। कबीर ने परम तत्व की अभिव्यक्ति कैवलाद्वैत के सहारे मानी है। परंतु उसमें आगमिक परंपरा और प्रत्यभिज्ञावाद का प्रभाव भी देखने को मिलता है। 'शिवसूत्र' में भोक्तृत्व भाव से मुक्त आत्मा को शुद्ध स्वरूप में स्थित होने के कारण केवली कहा गया है। यह केवला भाव ही केवलाद्वैत है।

इस तरह ब्रहम ही जगत का कारण रूप है, जो ब्रह्मांड में सर्वत्र व्याप्त है। वही सत्य स्वरूप है और उसने ब्रह्मांड के रूप में अपनी लीला का विस्तार किया है। यह ब्रहम सगुण और निर्गुण दोनों से परे है और अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है। कबीर में निरुपाधिक और सोपाधिक दोनों ब्रहम का वर्णन मिलता है। निरुपाधिक ब्रहम जहां सगुण-निर्गुण से परे और अनिर्वचनीय है, वहीं सोपाधिक ब्रहम का दर्शन, श्रवण, मनन आदि संभव है और व्यवहारिक उपासना में यही ग्राहय है।

माया - 'माया' की शास्त्रीय अवधारणा शंकर के तत्वचिंतन में देखने को मिलती है। मध्यकालीन चिंतन में मायावाद दार्शनिक विवेचन का एक प्रमुख अंग बन गया था। वेदांत में माया की दो शक्तियों का वर्णन है - आवरण और विक्षेप। आवरण शक्ति से माया वास्तविक स्वरूप को ढक देती है और विक्षेप शक्ति से वह उसी में वास्तविक सृष्टि कर देती है। कबीर दर्शन में माया के अनेक रूपों का वर्णन है - विद्यारुपिणी माया अर्थात आद्यामाया, झीनी माया अर्थात भ्रांतिरूपा माया और मोटी माया अर्थात आडंबरकारिणी माया।

विद्यारूपिणी माया ही ब्रहम की व्यक्त शक्ति है, जिसे उपादान कारण बनाकर वह विश्व की रचना करती है। वही स्थिति और विनाश रूपा भी है। गोचर जगत में वही व्याप्त है। यह माया चित्त को तत्व दर्शन की ओर अग्रसर करती है। झीनी या सूक्ष्म माया को भ्रमरुपिणी माया भी कहते हैं। कबीर दर्शन में इसका विशेष रूप से चित्रण हुआ है। इसे त्याग पाना बहुत कठिन है। आशा, तृष्णा, कामवासना, लोभ-मोह आदि इसी माया के रूप हैं। इसके प्रभाव में आकर मनुष्य नश्वर को अविनश्वर समझने लगता है, मिथ्या को सत्य समझ लेता है और तृप्ति में डूबा रहता है। गुरु कृपा से ही इस जाल से मुक्ति संभव है, 'कबीर माया मोहनी मोहे जाण सुजाण। भागां ही छूटै नहीं भरि भरि मारै बाण।।' माया का यह रूप बड़े-बड़े तपस्वी पैगंबरों को

अपने पाश में जकड़ लेता है, वे भी इससे नहीं बच पाए हैं। कबीर ने इस झीनी या सूक्ष्म माया का बहुत ही सूक्ष्म एवं मनोवैज्ञानिक पक्ष अपनी साखियों में प्रस्तुत किया है।

आडंबरकारिणी माया में कबीर माया के स्थूल पक्ष को देखते है। जिसमें लोक का जप, माला, छापा, तिलक जैसा आडंबरपूर्ण प्रदर्शन अथवा तीर्थ आदि का दिखावा किया जाता है। कनक-कामिनी जन्य मोह और अभिमान माया के इसी भेद के अंतर्गत देखे जा सकते हैं, 'माया की झल जग जल्या, कनक कामिणी लागि। कहु धौं किहि विधि रखिए, रुई लपेटी आगि।।' कबीर के दर्शन में माया शंकर अद्वैत एवं आगम चिंतन की शक्ति के रूप में व्यंजित हुई है। शंकर अद्वैत की तरह यह अनिर्वचनीय और त्रिगुणात्मक है और सांख्य चिंतन की तरह यह प्रकृति के समान प्रसवधर्मी त्रिगुणमयी है और शाक्त चिंतन की तरह यह अपरिमित शक्तिरूपा भी है। सूफी चिंतन में अभिव्यक्त शैतान की तरह भी है, जो साधना में बाधा डालती है। इस तरह कबीर के माया विषयक विचारों पर कई दर्शनों का प्रभाव देखने को मिलता है।

जीव - स्वरूप लक्षण की दृष्टि से कबीर के यहां जीव या जीवात्मा ब्रहम का अंश है अतः ब्रहम के साथ उसका अनशन से संबंध है कबीर ने जीवात्मा का स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार नहीं किया बल्कि उस परम तत्व का ही एक लघु रूप माना है कबीर ने जीव आत्मा एवं परमात्मा के इस अद्वैत भाग को अनेक साखीयों में प्रस्तुत किया है उनके अनुसार ब्रहम का साक्षात्कार होने पर आत्मा परमात्मा में और परमात्मा आत्मा में पूर्णतः लीन हो जाता है, 'हेरत हेरत हे सखी, रहया कबीर हेराय। बूंद समानी समुद्र में, सो कत तेरी जाय।।' यह जीवात्मा मात्र राम का अंश है। वह न तो मनुष्य है, न देव है, न योगी न यती और अवधूत है। न माता-पुत्र है, न राजा-रंक है, न ब्राहमण-बढ़ई है, न शेख तपस्वी है। वह मात्र राम का अंश है, 'कहै कबीर इहु राम को अंसु। जस कागद पर मिटै न मंसु।।' जीवात्मा कर्म बंधन के कारण जन्म-जन्मांतर के चक्र में बना रहता है, अन्यथा वह स्वतंत्र है और परमतत्व का ही रूप है। यह माया का प्रभाव है जिसके वशीभूत होकर जीवात्मा इस जगत में इधर-उधर भटकता रहता है, परंतु जैसे ही माया के बंधन तोड़ता है, वह सब भ्रमों से मुक्त हो जाता है। परमात्मा इस जीवात्मा में सदैव अद्वैत भाव से उपस्थित रहता है।

जगत - माया, ब्रहम और जीव संबंधी विचारों की भांति कबीर के जगत या सृष्टि संबंधी विचार भी कई दर्शनों से प्रभावित हैं। वे ज्यादातर वेदांत दर्शन के अनुकूल हैं। प्रत्यक्ष रूप से कहीं-कहीं सांख्य दर्शन का प्रभाव भी लक्षित होता है, परंतु सांख्य दर्शन के द्वैतवाद से वे सहमत नहीं थे। उनका ब्रहम और जगत का संबंध भी यही संकेत करता है कि वे अद्वैतवादी हैं। अपने पूरे दर्शन में उन्होंने अद्वैत वेदांत के विवर्तवाद, प्रतिबिंबवाद, आभासवाद, अध्यासवाद आदि का ही आश्रय लिया है।

कबीर की रचनाओं में कहीं पर भी व्यवस्थित सृष्टि विकास क्रम नहीं मिलता है। सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में उनमें केवल एक-दो स्थलों पर संकेत मात्र मिलते हैं। उनकी सृष्टि की उत्पत्ति संबंधी अवधारणा पूर्णतया भारतीय है, केवल एक आध स्थलों पर ही वे सूफी मत और इस्लाम से कुछ प्रभावित दिखाई पड़ते हैं। कबीर ने जगत को सेमल के फूल की भांति कहा है। सेमल के फूल के समान जगत् भी सत् होते हुए सारहीन है। अध्यारोप के सहारे इंद्रियां उसमें अपने विषयों का आरोप कर लेती हैं और वह आकर्षक मालूम होने लगता है, 'यों ऐसा संसार है जैसा सेंवल फूल। दस दिन के ब्यौहार को झूठे रंगि न भूल।।' इस प्रकार यह जो नाम-रूपात्मक

संसार दिखाई देता है वह वास्तव में सत्य नहीं है। जिसमें इसकी स्थिति है, वह तत्व अवश्य ही अगम और अगोचर है। यहां पर स्पष्ट ही कबीर ने शंकर के अद्वैत मत का अनुसरण किया है। वस्तुतः जगत आभास मात्र है। यह भास चित्र, दर्पण या स्वरूप साक्षात्कार के न होने के कारण होता है।

जगत के आदि और अंत दोनों ही अज्ञात हैं इसीलिए इस जगत के रहस्य को केवल उसका सृष्टा ही जान सकता है। इसकी रचना क्यों, कैसे और कब हुई? इन जिज्ञासाओं को कबीर अगम्य रूप में ही छोड़ देते हैं। उनकी दृष्टि में जगत सत्ता व्यवहारात्मक है, परमार्थिक नहीं। कबीर वाणी में संसार की क्षणभंगुरता, निःसारता संबंधी अनेक पद मिलते हैं। परंतु ऐसे उदाहरण, रूपक और दृष्टांत कबीर ने मनुष्य जीवन की प्रत्येक क्षण के महत्व और उपयोग को रेखांकित करने के लिए दिए हैं, जीवन से पलायन करने के लिए नहीं।

रहस्य-दर्शन - रहस्यदर्शी कवि विचारक की अभिव्यक्ति का आधार अलौकिकता के प्रति कौतूहलजन्य जिज्ञासा है। अनुभव की उस मानसिकता की अनिर्वचनीयता है। जब साधन भावना के सहारे आध्यात्मिक सत्ता की रहस्यमयी अनुभूतियों को वाणी के द्वारा शब्द में, चित्रों में सजाकर रखने लगता है, तभी साहित्य में रहस्यवाद की सृष्टि होती है।

अन्य रहस्यवादियों की तरह कबीर के जीवन का लक्ष्य आत्मनिरुपण एवं ब्रहमनिरुपण करना था। ब्रहम-विचार दर्शनशास्त्र का प्रमुख विषय है, रहस्यवादी का लक्ष्य भी यही होता है, परंतु दोनों की साधना में अंतर है। जहां दर्शनशास्त्र बुद्धि के सहारे अग्रसर होता है, वहीं रहस्यवादी साधना भावना को लेकर आगे बढ़ती है। भावना का संबंध ह्रदय से है और बुद्धि का मस्तिष्क से। ह्रदय रसकोष है जबकि बुद्धि तर्क की जननी है। उपनिषदों में ब्रहम को रसरूप कहा गया है और उस ब्रहम की अनूभूति में तरक की असमर्थता घोषित की गई है। कबीर ब्रहम की अनुभूति तथा ब्रहम के निरुपण में तर्क की निरर्थकता से पूर्ण पोरिचित थे, इसीलिए वे कहते हैं कहत कबीर तरक दुइ साधै तिनकी मति है मोटी अर्थात जो लोग तर्क से तत्व की द्वैतता सिद्ध करना चाहते हैं, उनकी बुद्धि बड़ी मोटी है।

भक्ति का आलंबन अधिकतर ब्रहम का आधिदैविक रूप होता है परंतु कबीर की उसमें आस्था नहीं थी। वह ब्रहम के आध्यात्मिक स्वरूप की अनुभूति करना चाहते थे। प्रेम के सहारे की हुयी आध्यात्मिक ब्रहम की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति अपने आप ही रहस्यात्मक हो जाती है। इसीलिए कबीर में प्रेममूलक भावात्मक रहस्यवाद की बड़ी मनोहर सृष्टि हुई है, 'पार ब्रहम के तेज का कैसा है उनमान, कहिबे कू सोभा नहीं देख्या ही परवान।'

रहस्य दर्शन के अंतर्गत कबीर के रहस्यवाद को किसी विशेष प्रकार के रहस्यवाद की कोटि के अंदर नहीं रखा जा सकता। उनमें जितने प्रकार के भी रहस्यवाद हो सकते हैं, सबकी सृष्टि हुई है। उनमें प्रमुख रूप से चार प्रकार के रहस्यवाद पाए जाते हैं - प्रेममूलक, यौगिक, पारिभाषिक शब्दजनित तथा अभिव्यक्तिजनित रहस्यवाद। उनका प्रेममूलक रहस्यवाद अत्यंत सुंदर है। इसमे आध्यात्मिकपूर्ण भावना की रसधार वही है, 'बहुत दिनन थै मैं प्रीतम पाये, भाग बड़े घरि बैठे आए। मंदिर मांहि भया उजियारा, ले सूती अपना पीउ पियारा।।' इस रहस्य दर्शन में कबीर ने आध्यात्मिक प्रेम, श्रृंगार एवं अद्भुत तत्वों का विशेष सहारा लिया है। रहस्यवाद का दूसरा रूप योगमूलक है। योग का सिद्धांत है कि जो कुछ ब्रहमांड में है वही पिंड में है। विश्व और

मानव की यह साधर्म्यता भारतीय मनीषियों और ग्रीक विद्वानों ने स्वीकार की है। कबीर की योग साधना भी विश्व और मानव के साधर्म्यता को मानकर आगे बढ़ी है।

कबीर की वाणी में रहस्यात्मकता का समावेश बहुत कुछ पारिभाषिक शब्दों के सहारे भी हुआ है। उन्होंने कहीं पर तो ६४ दीया और १४ चंदा का, कहीं १६ पवन आधारों का, कहीं ५२ कोठरिओं का, कहीं १६ चक्रों का और कहीं १० दरवाजों का वर्णन किया है। इसी प्रकार कहीं ब्रहम नालि, कहीं भ्रमर गुफा की और कहीं त्रिवेणी संगम की चर्चा करते हैं। कबीर की कुछ साखियां ऐसे पारिभाषिक शब्दों के होने के बावजूद भी मधुर बन गयी हैं।

कबीर का रहस्यवाद प्रवृत्यात्मक कोटि का है। वह एकांतिक नहीं है और इसका कारण यह है कि वे कोरे रहस्यवादी नहीं थे। वे उच्च कोटि के विचारक, गृहस्थ, सुधारक और उपदेशक भी थे। उन्होंने कहीं पर भी घर-बार छोड़कर बनवास लेने का उपदेश नहीं दिया है। कबीर के रहस्यवाद की एक अन्य प्रमुख विशेषता है उनकी एकात्मानुभूति, जिसे दूसरे शब्दों में अद्वैत भावना कहा जा सकता है। वह कबीर के रहस्यवाद का प्राण है। कबीर में इस भावना कॊ अभिव्यक्ति हर कहीं मिलती है। यहां पर उनका सूफियों से मतभेद है। सूफी रहस्यवाद पूर्ण अद्वैत अवस्था को नहीं प्राप्त होता। कबीर कहते हैं 'हम सब मांहि सकल हम माहीं, हम ते और कोउ दूसर नाहीं।' इस तरह उन्होंने स्पष्ट कहा है कि जब तक द्वैत भावना रहेगी, साधक सत्य से दुर रहेगा।

इस तरह कबीर में रहस्यवाद के प्रमुख रूप से चार प्रकार पाए जाते है -प्रेममूलक, यौगिक, पारिभाषिक शब्दजन्य तथा अभिव्यक्तिजनित। उनका प्रेममूलक रहस्यवाद सबसे श्रेष्ठ रूप में प्रस्तुत हुआ है। यौगिक रहस्यवाद विचित्र हठयोगी प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप उत्पन्न हुआ है। इनकी मान्यता है कि ब्रहमांड में अनेक लोक हैं, सूय हैं, चंद्र हैं, उसी प्रकार पिंड में भी यह सब वस्तुएं पाई जाती है। कबीर ने अपनी रचनाओं में पिंड में दिखाई देने वाले अनेक दृश्य तथा सुनाई देने वाली विविध प्रकार की ध्वनियों के अत्यंत रहस्यपूर्ण वर्णन किए हैं। यह अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद सिद्धों और नाथ पंथियों में वर्णित होता आया था. कबीर का अभिव्यक्तिमूलक रहस्यवाद उनसे अत्यधिक प्रभावित है। कबीर की उलटबांसियाँ ऐसे ही रहस्यवाद की सृष्टि करती हैं। कबीर के सभी प्रकार के रहस्यवादों में प्रेम और आनंद की भावना किसी न किसी रूप में अवश्य पाई जाती है। एकात्मिकता या अद्वैत भावना एक अन्य विशेषता है जिससे उनके सब प्रकार के रहस्यवाद अनुप्राणित हैं। उनका रहस्यवाद एकांतिक नहीं बल्कि प्रवृत्यात्मक है। संक्षेप में कबीर का रहस्यवाद अत्यंत पूर्ण और मधुर है।

हिंदी साहित्य में रहस्य भावना की अभिव्यक्ति करने वाले कवियों में जायसी, सूर, तुलसी और कबीर प्रमुख हैं। किंतु कबीर की तुलना में इनमें से कोई नहीं आ सकता। जायसी में कबीर के प्रेम मूलक रहस्यवाद की पूर्ण और मधुरतम अभिव्यक्ति मिलती है परंतु इतनी ठोस आध्यात्मिकता नहीं है, जितनी कबीर में है। तुलसी की रहस्य भावना बहुत कुछ अभिव्यक्तिमूलक हैं। उन्होंने ब्रहम के आधिदैविक स्वरूप को विशेष महत्व दिया है। अत: तुलसी में रहस्य भावना के लिए उतना स्थान नहीं है। तुलसी में कबीर जैसी रहस्य भावना नहीं मिलती है। सूरदास की रहस्य भावना उनके काव्य का प्रधान अंग नहीं है। उनमें जो कुछ रहस्यवाद मिलता है वह दृष्टिकूट पदों में ही है जो कि अभिव्यक्तिमूलक और शुष्क हैं। अत: कबीर के

रसात्मक रहस्यवाद से उसकी तूलना उचित नहीं। वस्तुतः कबीर का रहस्यवाद इन सब से भिन्न और श्रेष्ठ है और इसलिए वे हिंदी के श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि है।

२.३ सारांश

कबीर का काव्य ज्ञान और भक्ति नैतिकता और व्यावहारिकता की दृष्टि से दार्शनिक था और भावुकता आध्यात्मिकता और अलौकिकता से गहरा संबंध प्रस्तुत करती है। उनकी कविता मनुष्य को आत्मनिरीक्षण की ओर अग्रसर करती है। आचरण की शुद्धता के लिए वादे करती है सब कर्मो को अपनाने की भावना जागृत करती हुई मानव मात्र में आध्यात्मिकता विनम्रता ईश्वर के प्रति विश्वास सच्चरित्र तथा सामाजिक एकता और भगवत भक्ति का संचार करती है भेदभाव के हर स्तर से मुक्त कबीर और कबीर की कविता इसीलिए आज भी प्रासंगिक बनी हुई है।

२.४ वैकल्पिक प्रश्न

१) कबीर किस शासक के समकालीन माने जाते है ?
   क) कुतुबुद्दीन ऐबक ख) अकबर ग) सिकंदर लोदी घ) इब्राहीम लोदी

२) कबीर के गुरु माने जाते है -
   क) रामानंद ख) रामानुजाचार्य ग) शंकर घ) वल्लभाचार्य

३) 'कबीर साहब की परिचई' के रचनाप्रकार हैं ?
   क) प्रियादास ख) नाभादास ग) धर्मदास घ) अनंत दास

४) निम्न में से किस विद्वान के अनुसार कबीर का कोई मानव गुरु नहीं था ?
   क) मोहन सिंह ख) मौलाना नसीरुद्दीन
   ग) रामप्रसाद त्रिपाठी घ) गुलाम सरवर

५) भक्तमाल की टीका के रचयिता है ?
   क) रैदास ख) धर्मदास ग) नाभादास घ) प्रियादास

२.५ लघु-उत्तरीय प्रश्न

१. परमसत्ता के संबंध में कबीर के विचार क्या है ?

२. कबीर के गुरु कौन थे ?

३. भक्ति के लिए कबीर ने किसे अहम् माना ?

४. कबीर काव्य में जीव और जगत क्या है ?

५. कबीर का जगत संबंधित विचार किससे प्रेरित है ?

munotes.in

२.६ बोध प्रश्न

१. कबीर की भक्ति संबंधी अवधारणा का विस्तार से वर्णन कीजिए ?

२. कबीर की दार्शनिक मान्यताएँ क्या थीं ?

३. कबीर-काव्य में संवेदनागत वैविध्य का मूल्यांकन कीजिए।

४. कबीर आध्यात्मिक चेतना के कवि है वर्णन कीजिए।

५. कबीर के दार्शनिक विचारों पर सविस्तर चर्चा कीजिए।

६. कबीर के काव्य में रहस्य दर्शन की अभिव्यक्ति हुई है! सिद्ध कीजिए।

२.७ अध्ययन हेतु सहायक पुस्तके

कबीर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विववेदी
कबीर की विचारधारा : डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
भक्ति काव्य यात्रा : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नेगन्द्र, डॉ. हरदयाल

❖❖❖❖

munotes.in

इकाई-३

सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर

इकाई की रूपरेखा :

३.० इकाई का उद्देश्य
३.१ प्रस्तावना
३.२ सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर
३.३ भाषा-शिल्प
३.४ सारांश
३.५ लघु उत्तरीय प्रश्न
३.६ बोध प्रश्न
३.७ अध्ययन हेतु सहायक पुस्तकें

३.० उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी कबीर के सामाजिक सुधार के अंतर्गत धर्मावलंबी द्वेष कुरीतियों और कुप्रथाओं, जातिवाद पर किस प्रकार अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रहार किया यह जान सकेंगे। और अपनी भाषायी संप्रेषणीयत से एक प्रखर वक्ता के रूप में उपस्थित हुए इस संदर्भ में विद्यार्थी ज्ञान अर्जन कर सकेंगे।

३.१ प्रस्तावना

कबीर कि हिन्दी की निर्गुण संत काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि है। आपने लोक धर्मी कृतित्व और सामाजिक प्रतिबद्धता के चलते तत्कालीन समय के कवियों में सबसे ज्यादा विशिष्ट और प्रासंगिक कवि है। उनके काव्य में जहा भक्ति का अनुपम श्रोत बहता दिखाई देता है वहीं भक्ति के साथ-साथ युगीन चिंताएँ उनके काव्य प्रमुख रूप से उभर कर सामने आती है।

३.२ सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर

भारत के मध्ययुगीन इतिहास की सबसे प्रमुख घटना भक्ति आंदोलन का उदय है। भक्ति एकांतिक और व्यक्तिनिष्ठ साधना है। मध्ययुग में इसे वह उर्वर भूमि मिली जिसमें इसे पनपने का अवसर मिला। उत्तर भारत में भक्ति को जन-जन तक पहुंचाने का श्रेय सबसे पहले गुरु रामानंद को है, उनके बाद यह श्रेय भक्त कबीर को दिया जाता है। रामानंद ने भक्ति को

mumotes.in

एकांतिक साधना मानते हुए भी मानव मात्र के लिए सुलभ बनाया था तो दूसरी तरफ कबीर ने उसे लोकमानस में सहजता के साथ पैठने का मार्ग बताकर शास्त्र के बंधनों से मुक्त किया था। कबीर ने यह अनुभव कर लिया था कि शास्त्र-मर्यादा के साथ संप्रदायिक निष्ठा जुड़ ही जाती है इसीलिए शास्त्र तथा संप्रदाय की सीमा में रहकर मानव मात्र के लिए भक्ति का सर्व सुलभ पथ प्रशस्त नहीं किया जा सकता। कबीर 'सहज' में आस्था रखनेवाले मानवतावादी व्यक्ति थे। मजहबी कट्टरता से वह कोसों दूर थे। ह्रदय की स्वच्छ कसौटी और विवेक पर जो बात खरी उतरती थी, उसे ही वे सही मानते थे। यही बात उनके पूरे सामाजिक दर्शन में दिखाई देती है।

कबीर के सामाजिक विचारों को जानने के लिए उस पृष्ठभूमि को भी जानना आवश्यक है जहां से उन्हें अपने विचारों की प्रेरणा मिली। उनके समय में उत्तर भारत में इस्लाम अपनी जड़े जमा चुका था और पहले से रह रहे हिंदू भी थे। दोनों ही धर्मो के लोगों में अपने-अपने आचार-विचार, रीति-रिवाज और धार्मिक मान्यताओं को लेकर कट्टरता विद्यमान थी। परिणामत: दोनों ही धर्मावलंबी द्वेष और वैमनस्य की भावना एक दूसरे के लिए रखते थे। इन्हीं परिस्थितियों में कुछ स्वार्थी तत्व दोनों धर्मावलंबियों को बरगलाने का काम भी कर रहे थे। यही कारण था कि सामाजिक समरसता की स्थिति उत्पन्न नहीं हो पा रही थी और कोई उसके लिए प्रयास भी नहीं कर रहा था।

उस समय हिंदू धर्म अपनी आंतरिक समस्याओं से भी ग्रसित था। कुरीतियों और कुप्रथाओं का जोर था। चारों तरफ धार्मिक अव्यवस्था का वातावरण था। पूरे समाज में विषमता फैली हुई थी। जाति और धर्म के कारण मनुष्य मनुष्यता के मार्ग से हटता जा रहा था। कबीर ने अपने समय की इन समस्याओं को समझा और समाज की अव्यवस्था और विषमता को दूर करने का निश्चय किया। कबीर के समय हिंदू धर्म की स्थिति यह थी कि समस्त जनता पौराणिक आचार-विचार एवं विभिन्न धार्मिक क्रियाओं में लीन थी, परंतु इन क्रियाओं के पीछे जो तत्ववाद था वह दृष्टि-ओझल था। इसीलिए अज्ञानता के कारण कर्मकांड, तीर्थाटन, व्रत-उपवास, यज्ञ-होम आदि में आडंबर और मिथ्या प्रदर्शन बढ़ता गया और धर्म धीरे-धीरे ठगी का जरिया बन गया। इस समय हिंदू धर्म में अनेक संप्रदाय और मत-मतांतर प्रचलित थे जो सामाजिक विघटन का कारण भी बनते थे। कबीर ने इन सभी मतों और संप्रदायों में फैले हुए आडंबरों का विरोध किया और सामान्य जनमानस को धर्म के सहज रुप से परिचित कराया।

कबीर कोई धर्म-उपदेशक या पुजारी नहीं थे। वह जुलाहा थे और कपड़ा बुनने का व्यवसाय करते थे। संत स्वभाव का होने के कारण गुरु रामानंद से दीक्षा लेकर भक्ति के मार्ग पर चल पड़े। उनका भक्ति मार्ग समाज से गहरे तक संपृक्त है। मानव में भेद उत्पन्न करने वाले वाह्य आडंबरो, मजहब, रुढियों और अंधविश्वासों के प्रति जैसा कठोर रुख कबीर ने अपनाया वैसा किसी और संत कवि ने नहीं अपनाया था। उनका मानना था कि मानव मात्र की उत्पत्ति एक ही ज्योति से हुई है और एक ही ईश्वर सब में व्याप्त है। जब प्रकृति ने सबको एक जैसा बनाया है फिर यह ऊंच-नीच की खाई खोदकर मनुष्य और मनुष्य के बीच अंतर क्यों किया जाए, 'एक बूंद एक मल-मूतर एक चाम एक गूदा। एक जोति ते सब उपना कौन बाम्हन कौन सूदा।' इस समय वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा के नाम पर हिंदू समाज में छुआछूत के साथ जातियों की अस्पृश्यता का मिथ्या प्रचार हो गया था, जिसे कबीर ने कभी स्वीकार नहीं किया। इस तरह की रूढियों और परंपराओं की उन्होंने कठोर स्वर में निंदा की। इस उद्देश्य को लेकर उन्होंने न तो हिंदुओं को बख्शा और न ही मुसलमानों को। उनका कहना था, 'जो तू बाम्हन बम्हनी जाया

तौ आन बाट हवैं क्यों नहीं आया, जो तू तुरक तुरकनि जाया तो भीतर खतना क्यों न कराया।' इतने आक्रामक और स्पष्ट ढंग से सामाजिक अस्मिता को निम्न स्तर पर ले जाने वाले कारकों की निंदा किसी और संत कवि के यहां नहीं मिलती है। कबीर में अपनी बात को सीधे कहने का साहस था और यह साहस उनकी ऐसी साखियों में जगह-जगह दिखाई देता है।

कबीर पर इस संदर्भ में ज्यादातर चर्चाएं उनके समाज-सुधारक रूप को लेकर होती हैं। पर कबीर का दायरा इतना ही नहीं था, इससे कहीं ज्यादा व्यापक था। वे विशुद्ध मानवतावादी थे। जाति धर्म संप्रदाय से परे वे मानव-मानव की एकता पर विश्वास करते थे। उनका प्रमुख लक्ष्य मानव-मात्र में समता और एकता की स्थापना करता था। वे मूलतः भक्त ही थे परंतु जब उन्होंने समाज में ली हुई तमाम कुरीतियां और धर्म के नाम पर मानव-मानव के बीच मतभेद देखे, छल-कपट का व्यवहार देखा और इस छल-कपट के कारण पैदा हुआ दुख दैन्य देखा तो वे सहज नहीं रह सके और भक्ति के साथ-साथ मानव मात्र की पीड़ा और दुख-दैन्य को समाप्त करने का बीड़ा उठा लिया। वे एक समाज सुधारक से कहीं आगे बढ़कर एक महान मानवतावादी थे।

बाह्याचारों और आडंबरी के लिए कबीर ने केवल हिंदुओं और मुसलमानों का ही खंडन नहीं किया बल्कि अवधूतों, जैनों और वैष्णवों को भी नहीं बख्शा। वैष्णवों को तो वे बड़ी श्रद्धा से देखते थे परंतु उनकी आडंबरप्रियता के लिए उन्होंने निसंकोच उन्हें भी लज्जित किया है, 'बैसनों भया तौ क्या भया, बूझा नी विवेक। छापा तिलक बनाई करि, दग्ध्या लोक अनेक।।' कबीर ने केवल बाह्याचारों और आडंबरों का ही खंडन नहीं किया है बल्कि भिन्न-भिन्न प्रकार के साधकों को उनकी सच्ची साधना तथा धर्म का भी उपदेश दिया है। इस प्रकार के उपदेश देते समय उन्होंने किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया। भक्तों को वे रामनाम जपने और सतगुरु की सेवा करने का आदेश देते हैं और मिथ्या पाखंड से बचने की सलाह देते हैं, 'सति राम सद्गुरु की सेवा, पूजहु राम निरंजन देवा।' इसी प्रकार जोगी को उसकी साधना का सच्चा स्वरूप समझाते हैं। धर्म, सत्य आदि का उपदेश देते हैं और पाखंड एवं काम-क्रोध आदि से दूर रहने का आदेश देते हैं। हिंदू, मुसलमान, ब्राह्मण आदि की भी उन्होंने अलग ही व्याख्या दी है। वे कहते हैं 'सो हिंदू सो मुसलमान जाका दुरुस रहे ईमान। सो ब्राहमण जो कथै ब्रहम-गियान काजी सो जो जानै रहिमान।' इस तरह कबीर ने सामाजिक-धार्मिक क्षेत्र में अपनी कटु-उक्तियों से ज्ञान का प्रकाश फैलाने की कोशिश की है।

सामाजिक संदर्भो में कबीरदास जी की विचारधारा तत्कालीन समय में बड़ी क्रांतिकारी विचारधारा थी। सामाजिक क्षेत्र में जो सबसे बड़ा कार्य उन्होंने करना चाहा वह था, सामाजिक समानता और सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा। समाज में ऊंच-नीच, जातिभेद, वर्णभेद आदि को वे मानवीय एकता के लिए बाधक समझते थे और उन्होंने इस भेदभाव को प्रोत्साहन देने वाले वर्गो की भीषण आलोचना की है और सामाजिक क्षेत्र में उसकी निरर्थकता को सिद्ध किया है। वे कहते हैं, 'एक ज्योति से सब उत्पन्ना कौन बाम्हन कौन सूदा'। कबीरदास जी ने सामाजिक क्षेत्र में एक और बहुत बड़ा कार्य किया था और वह था आचरण की सात्विकता पर जोर। जीवन की सरलता, ह्रदय की निष्कपटता और मन की शुद्धता आदि का प्रचार करना कबीर के सामाजिक सुधार का प्रमुख लक्ष्य था। उन्होंने सर्वत्र इन पर जोर दिया है।

इस प्रकार कबीर की विचारधारा में हमें सामाजिक संदर्भो में मानवीयता के उज्ज्वल पक्ष समजने को मिलते हैं। उन्होंने परंपरागत अंधविश्वासों, प्रथाओं और संस्थाओं की आलोचना करके धर्म, दर्शन और समाज सभी क्षेत्रों में बुद्धिवादी साम्यवाद को प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए उन्होंने कटुता का आश्रय लेने में भी कोताही नहीं बरती। कबीर की रचनाएँ अपने समय के समाज की गरही आलोचक हैं और इसीलिए मानवीयता की गहरी समर्थक भी हैं।

३.३ भाषा-शिल्प

हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर ऐसे कवि के रूप में ख्यात हैं जो संवेदना और भाषा किसी भी स्तर पर शास्त्रीय सिद्धांतों में नहीं अटकते। जिस तरह शास्त्रीयता के आधार पर उनके काव्य की समीक्षा पूरी तरह से संभव नहीं है, उसी तरह उस समय के शास्त्रीय मानकों के अनुसार उनकी भाषा और अभिव्यक्ति पक्ष की समीक्षा भी उचित नहीं है। उसका कारण यह है कि जिस समाज में रहकर उन्होंने अपने भावों को वाणीबद्ध करने की प्रेरणा पाई थी और जिन्हें वे संबोधित कर रहे थे, वह उनके आस-पास का समाज था जिसके लिए किसी परिष्कृत और मानक भाषा की आवश्यकता नहीं थी और न ही छंद प्रयोग के कौशल की। भाषा और अभिव्यक्ति के संबंध में उनका अपना विचार क्या था, यह देखने योग्य है। उनका मानना था 'का भाषा का संस्कृत प्रेम चाहिए साँच। काम जो आवै कामरी का लै करै कमांच।।' इस तरह भाषा के संबंध में संप्रेषणीयता उनका मुख्य उद्देश्य था। सौंदर्य की महत्ता भी वे इसी में स्वीकार करते थे।

भाषा कबीर के व्यक्तित्व का प्रभावी अंग है। अपनी भाषा की संप्रेषण शक्ति के माध्यम से उन्होंने मामूली आदमी को भी काव्यरस का अधिकारी बनाया है। यही नहीं इसी भाषा सामर्थ्य से उन्होंने आम आदमी की अनुभूतियाँ को काव्यात्मकता प्रदान करते हुए उसकी काव्य ग्रहण क्षमताओं को भी प्रोत्साहित किया है। कबीर ने आम आदमी के आम अनुभवों को संवेदनात्मकता से भरकर उसी की भाषा और उसी के व्यवहार में प्रयुक्त प्रतीकों द्वारा काव्य प्रभाव के क्षेत्र को शास्त्रीयता के दायरे से निकालकर विस्तृत किया है। कबीर ने जिस भाषा को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है, वह जायसी और सूर आदि की भाषा के समान केवल मात्र जनपदीय भाषा नहीं है। कबीर की भाषा में ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुंदेली, राजस्थानी, खड़ी बोली, बिहारी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, सिंधी, बंगाली और अरबी-फारसी के अनेक तत्व सहज रूप से समाहित है। इसीलिए कबीर की भाषा को जनपद क्षेत्रों आदि के दायरे में बांधकर सीमित करना, उनकी भाषा की व्यापकता को नकारना है। वास्तव में कबीर की अभिव्यक्ति पंजाब से बंगाल तक, हिमाचल से मालवा तक, विदर्भ-महाराष्ट्र, गुजरात, कच्छ, काठियावाड़ और सिंध तक के बहुत बड़े भू-भाग में बोली समझी और सराही जाती है। ऐसी समर्थ भाषा को कुछ विद्वानों द्वारा गँवारु कहना था उसे क्षेत्र आदि की सीमाओं में सीमित करना उनकी भाषायी क्षमता के साथ अन्याय होगा।

कबीर की भाषा तो मध्य देश की समन्वित काव्यभाषा है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने उसके लिए 'सधुक्कड़ी' शब्द प्रयुक्त किया है। सधुक्कड़ी शब्द 'षट्भाषा' शब्द का अपभ्रंश रूप है। यह षट्भाषा मध्यकाल की काव्यभाषा के लिए एक मिश्रित रचना शैली के रूप में पहले भी

संकेत की जा चुकी थी। षट्भाषा से तात्पर्य है छः भाषाएँ। यहा छः भाषाओं का अर्थ केवल मात्र छः भाषाएं नहीं है, बल्कि भाषाओं का एक समन्वित रूप है। यह भाषा किसी कृत्रिमता का परिणाम नहीं है, बल्कि काव्यभाषा के रूप में भाषा सिद्धांत है। कबीर से पूर्व यह भाषा व्यवहार का माध्यम बन चुकी थी। उड़ीसा के जयदेव, पश्चिमी प्रदेशों के सधना और बेनी, महाराष्ट्र के चक्रधर, ज्ञानेश्वर, त्रिलोचन और नामदेव आदि ने इस भाषा का प्रयोग किया है। कबीर के शब्द या पद, गुरु स्वाम रामानंद, सेना, पीपा और रैदास की रचनाएं लगभग इसी भाषा में हैं। अतः कबीर को यह साधु भाषा अपने परिवेश से तो मिली ही, काव्य रूप में यह उपदेश की भाषा नाथपंथी साधकों की भी भाषा रह चुकी थी, जिसका प्रचार क्षेत्र भी वही हैं।

इस तरह देखा जा सकता है कि भाषा प्रयोग की दृष्टि से कबीर लोक-प्रतिनिधि थे, क्योंकि उन्होंने अपनी आध्यात्मिक एवं सामाजिक संवेदनाएं लोकभाषा में ही प्रस्तुत की है। कबीर की भाषा की शक्ति इसी तथ्य से पहचानी जा सकती है कि उन्होंने इसी आम भाषा में अरुप, अलख, और अगोचर ब्रम्ह को वाणी का विषय बनाया है। अपनी लोकभाषा द्वारा उस अगम्य तत्व को बोधगम्य करा देना कबीर के ही वश की बात थी। विभिन्न अगोचर तत्वों को कबीर ने विभिन्न रूपकों, दृष्टांतों और प्रतीकों के सहारे व्यक्त करने में सफलता पायी है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी कबीर की भाषा शक्ति को पहचानते हुए लिखते है, "भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा दिया है। बन गया तो सीधे-सीधे नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार सी नजर आती है।" आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कबीर की ने केवल भाषायी सामर्थ्य को पहचाना बल्कि उनकी संवेदनात्मक सामर्थ्य को भी उन्होंने नई पहचान दिलाने का श्रमसाध्य कार्य किया था।

कबीर के शब्द सामर्थ्य अत्यंत व्यापक थी। उनकी भाषा में न केवल विभिन्न क्षेत्रीय बोलियों के शब्द दिखाई पड़ते हैं, बल्कि समाज के भीतर विभिन्न व्यवसायों से जुड़े हुए समुदायों के विशिष्ट शब्द भी दिखाई देते हैं। उस समय की ब्रज, भोजपुरी, अवधी, खड़ी बोली, बुंदेली, राजस्थानी, पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि भाषा - बोलियों के अतिरिक्त अरबी फारसी आदि विदेशी भाषाओं के लोक प्रचलित शब्द भी सहज ढंग से कबीर की भाषा में चले आए हैं। जिस परिवेश में वे स्वयं रहे वहां के विभिन्न वर्गों, जातियों और व्यवसायों के लोगों जैसे लोहार, कुम्हार, बढ़ई, जुलाहा, कलवार, कृषक, मजदूर, माली, मल्लाह, धानुक आदि के व्यवसायगत शब्दों का प्रयोग भी उन्होंने किया है। उनके काव्य में आए बजिज, ढिकुली, चेजारा, अपूठा, डूंगरि, गाडर, हींगलू, मैवासा, हजारी, खेवडिया, डहडही, लहुरिया, पलीता, निहोरा, झॉई आदि ऐसे ही शब्द हैं। इन शब्दों के पर्याय तत्सम शब्दावली में मिलना कठिन हैं। इसी तरह अरबी के असरार, जिबहै, हलाल, साबित तथा फारसी भाषा के गौर, दीदार, दोजख, बिसमिल, दरगाह, पैमाल, खसम आदि शब्द देखने को मिलते हैं। इस तरह कबीर की शब्द सामर्थ्य भी अत्यंत व्यापक थी।

कबीर की वाणी में सहजता है। उन्होंने उसे कभी भी अलंकारिक बनाने की चेष्टा नहीं की। उनकी वाणी में जो अलंकारिकता देखने को मिलती है, वह सहज ढंग से ही प्रस्तुत हुई है। उनकी वाणी में रूपक, सांगरूपक और रूपकतिशयोक्ति के सर्वाधिक प्रयोग देखने को मिलते हैं। यमक और श्लेष का प्रयोग भी मिलता है तथा कहीं-कहीं उपमा और उत्प्रेक्षाओं के साथ-साथ व्यतिरेक, विभावना, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास आदि अनेक अलंकार अभिव्यक्ति में

सहज रूप से ही चले आए है, 'कमल जो फूले जलह बिन' (विभावना) : 'ठाढ़ा सिंह चरावै गाई' (विशेषोक्ति) आदि ऐसे ही उदाहरण हैं। इन अलंकारों के सहज प्रयोग से कबीर जिस परोक्ष सत्ता को वाणीबद्ध करना चाहते थे, उसे व्यक्त करने में सफल रहे हैं।

कबीर ने अपनी संवेदना और भावों को व्यक्त करने के लिए प्रतीकों का भी बड़ा ही सुंदर प्रयोग किया है। उनके प्रतीक सामाजिक जीवन से निकलकर आए है, जो व्यावहारिक हैं। उन्होंने अगम, अगोचर, निर्गुण आदि विषयों को प्रकट करने के लिए सादृश्यमूलक उपमानों और प्रतीकों का बड़ा ही कुशल प्रयोग किया हैं। ऐसी अनिर्वचनीय अनुभूतियों को संप्रेषित कर पाना किसी भी कवि के लिए बहुत ही जटिल कार्य होता है, परंतु कबीर की आंतरिक अनुभूति इतनी प्रखर और सधन थी कि उन्होंने साम्यमूलक एवं विरोधमूलक उपमानों और प्रतीकों के सहारे अपनी अनूभूतियों को संप्रेषित करने में सफलता पायी है। कबीर ने इन प्रतीकों के द्वारा आत्मा को हंस, सती, विरहिणी और सुंदरी आदि के रूप में व्यक्त किया है। इड़ा नाड़ी को गंगा, चंद्रमा और वरुणा कहा है, पिंगला नाड़ी को जमुना, सूर्य तथा सुषुम्ना को सरस्वती नदी, बंकनालि आदि कहा है। मन को मृग, मेंढक, मर्कट, मंजार आदि कहा है। गुरु को सुनार, हंस, पारखी, चंदन आदि कहा है। अस्तित्वहीन माया को अनुपम बेल, अनब्यायी गाय का दूध, खरगोश के सींग की ध्वनि आदि से व्यक्त किया है। उन्होंने दांपत्य जीवन संबंधी प्रतीकों के द्वारा आत्मा-परमात्मा के मिलन का अत्यंत मार्मिक चित्रण किया है। ऐसे ही माली तथा कलियों के प्रतीकों द्वारा संसार की क्षणभंगुरता को स्पष्ट किया है और यह सारा कार्य-व्यापार मनुष्य को नैतिक और आध्यात्मिक ऊंचाई देने के लिए रचा है।

कबीर की उलटबांसियाँ :

हिंदी साहित्य में उलटबांसी शब्द का प्रयोग आधुनिक काल की देन है। यद्यपि इस अर्थयुक्त संदर्भों का प्रयोग अत्यंत प्राचीन काल से भारतीय साहित्य में हो रहा है परंतु इसका प्रयोग करने वाले संतों की वाणी में यह शब्द इसी रूप में प्रयोग में नहीं आया है। उलटबांसी शैली में रचनाएं कबीर से पहले भी भारतीय साहित्य में मिलती हैं। इस शैली के प्रयोक्ता प्राय: वे सभी साधक हैं जिन्होंने आध्यात्मिक अनुभूतियों को, सामाजिक रूढ़ियों को, रूढ़िग्रस्त धारणाओं को वाणी की तीक्ष्ण संकेतिक धार से अभिव्यक्त भी किया है और ध्वस्त भी। मोटे तौर पर कहा जा सकता है कि सांकेतिक विरोधात्मक प्रतीक-योजना संयुक्त और चमत्कार उत्पन्न करने वाली यह उलटबांसी शैली एक तरफ तो मारक प्रहार करती है और दूसरी तरफ विषय के मर्म को समझाती भी है।

उलटबांसी पद अटपटी वाणी के रूप में रचे गए हैं। जिन्हें सुनकर श्रोता या पाठक विस्मित रह जाता है अथवा उन्हें व्यर्थ समझकर उपेक्षा कर देता है। इन पदों में रहस्य चमत्कारी अद्भुत तत्वों की प्रवृत्ति विशेष रूप से देखने को मिलती है और इस रहस्य या अटपटेपन का प्रतीकों के माध्यम से निदर्शन होता है। संत कवि कबीर साधना को, विचारानुभव को, अनुभूति की अनिर्वचनीयता को योगपरक रूपकों अथवा उलटबांसी पदों के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करते रहे हैं। उनके उलटबांसी पदों में विरोधगर्भित प्रतीकों के द्वारा विधि-विरोध अथवा प्रकृति-विरोध के रूप में सामाजिक विसंगति भी उभरकर आई हैं।

कबीर ने जो उलटबासिंया रची हैं वह रहस्यात्मक होने के साथ-साथ अटपटी विचित्र और आश्चर्यचकित करने वाली है। इनमें भी उसी विपरीत एवं अस्पष्ट कथन का प्रधान्य है और

यह भी आध्यात्मिक अनुभूति से परिपूर्ण होने के कारण किसी न किसी प्रकार के तात्त्विक रहस्य की ओर संकेत करती हैं। यह सभी उलटवासियों लोक-व्यवहार एवं प्राकृतिक नियमों के सर्वथा विरुद्ध दिखाई देती हैं, परंतु इनमें निहित प्रतीकात्मक अर्थ समझने पर पता चलता है कि यह किसी न किसी तात्विक सिद्धांत का विवेचन करती हैं -

कैसे नगरि करौं कुटवारी। चंचल पुरिष विषचन करती हैं -
बैल बियाई गाई भई बांझ। बछड़ा दूहै तीन्यू साँझ।।
मकड़ी घरि भाषी छछिहारी। मांस पसारि चील्ह रखवारी।।
मूसा खेवट नाव बिलइया। मींडक सोवै सांप पहरइया।।
मित उठी स्याल स्यंग सूं झूंझै। कहै कबीर कोई बिरला बूझै।।

उक्त पद में कबीर ने अद्भुत मानवेत्तर प्राणियों के प्रतीकों द्वारा उनके अस्वाभाविक व्यापारों का वर्णन किया है जिसके परिणाम स्वरूप नगर के शासन प्रबंध में उत्पन्न बाधा की ओर भी संकेत किया है। इस पद के अंतर्गत प्रतीकों की भरमार है जिनमें से नगर मानव शरीर का, पुरुष और नारी मन और कामना के, बैल विकृत मन का, बंध्या गाय सात्विक बुद्धि की, बछरा इंद्रियों का, माया मकड़ी की, मांखी इच्छा की, मांस विषयों का, मूसा मन का, बिल्ली दुरमति की, सर्प संशय का स्याल जीव का और सिंह काल का प्रतीक है। इन प्रतीकों द्वारा मानव शरीर के अंतर्गत उत्पन्न बाधाओं का उल्लेख करते हुए कबीर ने संसार के प्रपंच में ग्रस्त जीव की दीन-हीन अवस्था का सारगर्भित वर्णन किया है। यदि इस पद का अर्थ सांकेतिक प्रतीकों की अभिधा से किया जाए तो बहुत ही विचित्र एवं बेसिर पैर का बिंब बनेगा परंतु जिज्ञासा पूर्वक जब पद की प्रथम पंक्ति और अंतिम पंक्ति को ध्यानपूर्वक देखा जाए तो पद में अर्थ संबंधी कुछ सूचनाएं मिल जाती है। साधना पथ पर चलने के लिए गुरु वचनों पर विश्वास परम आवश्यक है।

उलटबांसी शैली में कबीर ने बहुत से पदों, साखियों आदि की रचना की है। उलटबांसी शैली को वास्तव में जिस तरह कबीर जैसा समर्थ प्रयोक्ता व्यक्तित्व मिला है, वैसा समग्र संत साहित्य में दूसरा नहीं है। विषय प्रतिपादन, प्रतीक-योजना, रूपक-तत्व, चमत्कार सृष्टि आदि में कबीर का कुछ ऐसा व्यक्तित्व है जो परवर्ती संतो के लिए पृष्ठभूमि निर्मित करता है। कबीर ने उलटबांसी शैली प्रयोग में परंपरा से ग्रहण तो किया है परंतु उसका ताना-बाना अपने ही ढंग से बुना है। कबीर के उलटबांसिया सर्वसाधारण को चमत्कृत करती है और जिज्ञासु को अर्थ गहराई में ले जाने के लिए प्रेरित करती हैं।

३.४ सारांश

वस्तुतः हिंदी के मध्यकालीन संत कवियों में कबीर ऐसे कभी रहे हैं जिन्होंने जीवन के हर पक्ष को अभिव्यक्ति दी है उनकी अभिव्यक्ति में समाज गहरे तक संपर्क रहा है संवेदना और संप्रेषण दोनों ही स्तरों पर उनके जैसी सहजता उस काल के अन्य कवियों में देखने को नहीं मिलती है संवेदना के साथ-साथ भाषा की विशेषता विशिष्टता उन्हें सबसे विशिष्ट बनाती है कबीर का निर्माण शास्त्र से नहीं स्वानुभूति से हुआ है उनकी साखियां वैयक्तिक अनुभूतियों का भंडार है जीवन के सहज अनुभव के स्वाभाविक सौंदर्य से सौंदर्य मान हैं।

३.५ लघु उत्तरीय प्रश्न

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को क्या नाम दिया है ?
२. कबीर भक्तों को क्या जपने का आदेश देते है ?
३. सामाजिक सुधार के अंतर्गत कबीर ने किन बातों पर जोर दिया ?
४. कबीर के समय में मनुष्य का मनुष्यता के मार्ग से हटने का क्या कारण था ?
५. कबीर दासजी ने सामाजिक क्षेत्र में कौनसा बड़ा कार्य किया ?
६. किस आचार्य ने कबीर को वाणी का डिक्टेटर कहा है ?

३.६ बोध प्रश्न

१. सामाजिक परिप्रेक्ष्य में कबीर के विचारों को स्पष्ट कीजिए।
२. कबीर के भाषायी सौंदर्य का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
३. कबीर समाज सुधारक है उनकी रचनाओं के उदाहरण द्वारा स्पष्ट कीजिए।
४. कबीर वाणी के डिक्टेटर है सिद्ध कीजिए।

३.७ अध्ययन हेतु सहायक पुस्तकें

कबीर : आचार्य हजारी प्रसाद द्विववेदी
कबीर की विचारधारा : डॉ. गोविंद त्रिगुणायत
भक्ति काव्य यात्रा : डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नेगन्द्र, डॉ. हरदयाल

munotes.in

❖❖❖❖

कबीरदास

जन्म : 1398 ई. के आसपास।

निधन : 1518 ई. के आसपास।

कृतियाँ : बीजक, जो पद, रमैनी और साखी के रूप में विभक्त हैं।

कबीरदास के जीवन-सन्दर्भ में प्रामाणिक तौर पर कुछ कह पाना कठिन है। अपने सम्बन्ध में उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा, जिसके कारण उनका जन्म और मृत्यु—दोनों तिथियाँ अनिर्णीत हैं। विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से इस सम्बन्ध में अटकलें लगाने की कोशिश की हैं।

कबीर का लालन-पालन नीरू और नीमा नामक मुसलमान दम्पती ने किया। इनके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इन्होंने स्याही, कागज और कलम का स्पर्श नहीं किया था—'मसि कागद छुओ नहिं, कलम गह्यौ नहिं हाथ।' फिर भी, कबीर ने अपनी प्रातिभ शक्ति से हिन्दी साहित्य का अतिशय कल्याण किया।

कबीर भक्तिकाल के ज्ञानाश्रयी (निर्गुण) शाखा के प्रवर्तक कवि हैं। इनके दीक्षा गुरु वैष्णव भक्त रामानन्द हैं। उनकी दृष्टि में ईश्वर अथवा ब्रह्म की व्याप्ति दुनिया के कण-कण में है, अत: उसे अन्यत्र खोजने की जरूरत नहीं। ब्रह्म-प्राप्ति के लिए हृदय की स्वच्छता और पवित्रता चाहिए। कबीर सात्त्विक जीवन के समर्थक और शुद्ध सत्य के पुजारी थे। उन्होंने किसी धर्म-ग्रन्थ को महत्त्व नहीं दिया। आडम्बरहीन जीवन जीने में उन्हें पूरा विश्वास था।

उन्होंने तटस्थ भाव से हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्मों में निहित आडम्बरवादी प्रवृत्तियों की खुलकर आलोचना की। उनके मस्तिष्क में एक स्वस्थ और स्वच्छ समाज की परिकल्पना थी। उनका जीवन अन्त तक लाग-लपेट से पूरी तरह दूर रहा। वे समाज-सुधारक थे और भक्त भी। उन्होंने 'राम' को अपने प्रियतम के रूप में स्वीकार किया। व्यक्ति के जीवन की अन्तिम आकांक्षा परमात्मा से साक्षात्कार की होती है, जब तक परमात्मा से आत्मा का मिलन नहीं हो जाता, जीवन अधूरा और अपूर्ण है। परमात्मा ही जीवन का सर्वस्व है। संसार के समस्त सुखों की उपलब्धि उसके दर्शन में निहित है। राम से बड़ा जीवन का और कोई सच नहीं है।

उसकी कृपा से जीवन के समस्त दुःख-दर्द विनष्ट हो जाते हैं और जीवन में अमित खुशियाँ प्रकट हो जाती हैं।

ब्रह्म-प्राप्ति के लिए, उनकी दृष्टि में, जंगल में धूनी रमाने और गेरुआ वस्त्र धारण करने की जरूरत नहीं है, बल्कि इसी संसार में, गार्हस्थ्य जीवन जीते हुए, पत्र-पत्र की नाईं, परमात्मा का साक्षात्कार किया जा सकता है। कबीर का जीवन-दर्शन आज के सन्दर्भ में भी प्रासंगिक है।

हिन्दी साहित्य में कबीर के समान दूसरा कोई अक्खड़ कवि नहीं है। उनकी निर्भीकता, साहसिकता और तटस्थता—हमें सम्मानपूर्वक जीवन जीने की सीख देती है। उनकी दृष्टि में ज्ञानी और पंडित वही है, जिसने ढाई आखर 'प्रेम' के शब्द को अच्छी तरह से पहचान लिया हो, परख लिया हो—

पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ,
पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का,
पढ़ै सो पंडित होय॥

पद

[1]

मोकों कहाँ ढूढ़े बंदे, मैं तो तेरे पास में।
ना मैं देवल ना मैं मसजिद, ना काबे कैलास में।
ना तो कौने क्रिया-कर्म में, नहीं योग बैराग में।
खोजी होय तो तुरतै मिलिहौं, पल भर की तालास में।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, सब स्वाँसों की स्वाँस में॥

[3]

साधो भाई, जीवत ही करो आसा।
जीवत समझे जीवत बूझे, जीवत मुक्तिनिवासा।
जीवन करम की फाँस न काटी, मुये मुक्ति की आसा।
तन छूटे जिव मिलन कहत है, सो सब झूठी आसा।
अबहुँ मिला तो तबहुँ मिलेगा, नहिं तो जमपुरबासा।
सत्त गहे सतगुरु को चीन्हें, सत्त-नाम विस्वासा।
कहैं कबीर साधन हितकारी, हम साधन के दासा॥

[5]

अवधू, माया तजी न आई।
गिरह तज के बस्तर बाँधा, बस्तर तज के फेरी।
काम तजे तें क्रोध न जाई, क्रोध तजे तें लोभा।
लोभ तजे अहँकार न जाई, मान-बड़ाई-सोभा।
मन बैरागी माया त्यागी, शब्द में सुरत समाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह गम बिरले पाई॥

[8]

इस घट अंतर बाग-बगीचे, इसी में सिरजनहारा।
इस घट अंतर सात समुंदर, इसी में नौ लख तारा।

इस घट अंतर पारस मोती, इसी में परखनहारा।
इस घट अंतर अनहद गरजै, इसी में उठत फुहारा।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इसी में साईं हमारा॥

[11]

निस-दिन खेलत रही सखियन सँग,
मोहि बड़ा डर लागे।
मोरे साहब की ऊँची अटरिया,
चढ़त में जियरा काँपे॥
जो सुख चहै तो लज्जा त्यागे,
पिया से हिलमिल लागे।
घूँघट खोल अंग भर भेंटे,
नैन आरती साजे॥
कहैं कबीर सुनो सखि मोरी,
प्रेम होय सो जाने।
जिन प्रीतम की आस नहीं है,
नाहक काजर पारे॥

[14]

दरियाव की लहर दरियाव है जी
दरियाव और लहर में भिन्न कोयम्।
उठे तो नीर है बैठे तो नीर है
कहो जो दूसरा किस तरह होयम्।
उसी का फेर के नाम लहर धरा
लहर के कहे क्या नीर खोयम्॥

[20]

मन, तू पार उतर कहँ जैहौ।
आगे पंथी पंथ न कोई कूच-मुकाम न पैहौ।
नहिं तहँ नीर, नाव नहिं खेवट, ना गुन खैंचनहारा।
धरनी-गगन-कल्प कुछ नाहीं, ना कछु वार न पारा।
नहिं तन, नहिं मन, नहीं अपनपौ सुन्न में सुद्धि न पैहो।
बलीवान होय पैठो घट में, वाहीं ठौरैं होइहौ।
बार-हि-बार बिचार देख मन, अंत कहूँ मत जैहौ।
कहैं कबीर सब छाड़ि कलपना, ज्यों के त्यों ठहरैहौ॥

[21]

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अंध है।
लखत लखत लखि परै, कटै जम फंद है॥
कहन-सुनन कछु नाहिं, नहीं कछु करन है।
जीते जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है॥
जोगी पड़े बियोग, कहैं घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है॥
बाह्मन दिच्छा देता घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै॥
ऐसन साहब कबीर सलोना आप है।
नहीं जोग नहीं जाप पुन्न नहीं पाप है॥

[22]

साधो, सो सतगुरु मोहिं भावै।
सत्त प्रेम का भर भर प्याला, आप पिवै मोहिं प्यावै।
परदा दूर करै आँखिन का, ब्रह्म दरस दिखलावै।
जिस दरसन में सब लोक दरसै, अनहद सब्द सुनावै।
एकहि सब सुख-दुख दिखलावै, सब्द में सुरत समावै।
कहैं कबीर ताको भय नाहीं, निर्भय पद परसावै॥

[33]

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार बार वाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले।
सुरत-कलारी भई मतवारी मदवा पी गई बिन तोल।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल तलैया क्यों डोले।
तेरा साहब है घर माहीं, बाहर नैना क्यों खोले।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल ओले॥

[35]

बालम आवो हमारे गेह रे।
तुम बिन दुखिया देह रे।
सब कोई कहे तुम्हारी नारी, मोकों लागत लाज रे।
दिल से नहीं दिल लगायो, तब लग कैसा सनेह रे।
अन्न न भावै नींद न आवै, गृह-बन धरै न धीर रे।
कामिन को है बालम प्यारा, ज्यों प्यासे को नीर रे।
है कोई ऐसा पर-उपकारी, पिवसों कहै सुनाय रे।
अब तो बेहाल कबीर भयो है, बिन देखे जिव जाय रे॥

[39]

साधो, यह तन ठाठ तँबूरे का।
ऐंचत तार मरोरत खूँटी, निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखरगे खूँटी, हो गया धूरम-धूरे का।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, अगम पंथ काई सूरे का॥

[41]

संतो, सहज समाधि भली।
साँई ते मिलन भयो जा दिनतें सुरत न अंत चली॥
आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूँ, सुंदर रूप निहारूँ॥
कहूँ सो नाम सुनूँ सो सुमिरन, जो कुछ करूँ सो पूजा।
गिरह-उद्यान एकसम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा॥
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कुछ करूँ सो सेवा।
जब सोऊँ तब करूँ दंडवत, पूजूँ और न देवा॥
शब्द निरंतर मनुआ राता, मलिन बचन का त्यागी।
ऊठत-बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी॥
कहैं कबीर यह उनमुनि रहनी, सो परगट कर गाई।
सुख-दुख के इक परे परम सुख, तेहि में रहा समाई॥

[43]

पानी बिच मीन पियासी।
मोहिं सुन सुन आवै हाँसी॥
घर में वस्तु नजर नहिं आवत।
बन बन फिरत उदासी॥
आतमज्ञान बिना जग झूँठा।
क्या मथुरा क्या कासी॥

[46]

साधो, सहजै काया सोधो।
जैसे बट का बीज ताहि में पत्र-फूल-फल-छाया।
काया मद्धे बीज बिराजे, बीजा मद्धे काया।

अग्नि-पवन-पानी-पिरथी-नभ, ता-बिन मिलै नाहीं।
काजी पंडित करो निरनय को न आपा माहीं।
जल-भर कुंभ जलै बिच धरिया, बाहर-भीतर सोई।
उनको नाम कहन को नाहीं, दूजा धोखा होई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्य-शब्द निज सारा।
आपा-मद्धे आपै बोलै, आपै सिरजनहारा॥

[47]

तरवर एक मूल बिन ठाढ़ा, बिन फूले फल लागे।
साखा-पत्र कछू नहिं ताके, सकल कमल-दल गाजे।
चढ़ तरवर दो पंछी बोले, एक गुरू एक चेला।
चेला रहा सो रस चुन खाया, गुरू निरंतर खेला।
पंछी के खोज अगम परगट, कहैं कबीर बड़ी भारी।
सब ही मूरत बीज अमूरत, मूरत की बलिहारी॥

[51]

सखियो, हमहुँ भई बलमासी।
आयो जोबन बिरह सतायो, अब मैं ज्ञान गली अठिलाती।
ज्ञान-गली में खबर मिल गये, हमें मिली पिया की पाती।
वा पाती में अगम सँदेसा, अब हम मरने को न डराती।
कहत कबीर सुनो भाई प्यारे, बर पाये अविनासी॥

[55]

भक्ति का मारग झीना रे।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ लीना रे।
साधन के रस-धार में, रहे निस-दिन भीना रे।
राग में स्रुत ऐसे बसे, जैसे जल मीना रे।
साँई सेवन में देत सिर, कुछ बिलम न कीना रे।
कहैं कबीर मत भक्ति का, परगट कर दीना रे॥

[57]

साधो, शब्द-साधना कीजै।
जे ही शब्द ते प्रगट भये सब, सोई शब्द गहि लीजै॥
शब्द गुरु शब्द सुन सिख भये, शब्द सो बिरला बूझै।
सोई शिष्य सोई गुरु महातम, जेहि अंतर-गति सूझै॥

शब्दै वेद-पुरान कहत हैं, शब्दै सठ ठहरावै।
शब्दै सुर-मुनि-संत कहत हैं, शब्द-भेद नहिं पावै॥
शब्दै सुन सुन भेष धरत हैं, शब्दै कहै अनुरागी।
षट-दर्शन सब शब्द कहत हैं, शब्द कहै बैरागी॥
शब्दै काया जग उतपानी, शब्दै केरि पसारा।
कहै कबीर जहँ शब्द होत है, भवन भेद है न्यारा॥

[64]

साँई से लगन कठिन है भाई।
जैसे पपीहा प्यासा बूँद का, पिया पियाँ रट लाई।
प्यासे प्राण तड़फै दिन-राती, और नीर ना भाई।
जैसे मिरगा शब्द-सनेही, शब्द सुनन को जाई।
शब्द सुनै और प्रानदान दे, तनिको नाहिं डराई।
जैसे सती चढ़ी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई।
पावक देख डरे वह नाहीं, हँसत बैठे सदा माई।
छोड़ो तन अपने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहिं तो जनम नसाई॥

[65]

जब मैं भूला रे भाई,
मेरे सतगुरु जुगत लखाई।
किरिया-करम-अचार छाँड़ा, छाँड़ा तीरथ का न्हाना।
सगरी दुनिया भई सयानी, मैं ही इक बौराना।
ना मैं जानूँ सेवा-बँदगी, ना मैं घंटा बजाई।
ना मैं मूरत धरी सिंहासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई।
ना हरि रीझैं जप तप कीन्हें, ना काया के जारे।
ना हरि रीझैं धोती छाँड़े, ना पाँचों के मारे।
दया राखि धरम को पालै, जग सो रहे उदासी।
अपना-सा जिव सबको जानै, ताहि मिलै अविनासी।
सहै कुशब्द बाद को त्यागै, छाँड़ै गर्व-गुमाना।
सत नाम ताही को मिलिहै कहै कबीर सुजाना॥

[66]

मन ना रँगाए रँगाए जोगी कपड़ा।
आसन मारि मंदिर में बैठे
ब्रह्म-छाँड़ि पूजन लागे पथरा॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले
दाढ़ी बढ़ाय जोगी होय गैले बकरा।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले
काम जराय जोगी होय गैले हिजरा॥
मथवा मुँड़ा जोगी कपड़ा रंगौले,
गीता बाँच के होय गैले लबरा।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो,
जम दरवजवा बाँधल जैबे पकड़ा॥

[69]

जो खोदाय मसजीद बसतु है और मुलुक केहि केरा।
तीरथ-मूरत राम-निवासी बाहर करे को हेरा।
पूरब दिसा हरी कौ बासा पच्छिम अलह मुकामा।
दिल में खोज दिलहि में खोजौ इहैं करीमा-रामा।
जेते औरत-मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा।
कबीर पोंगड़ा अलह-राम का सो गुरु पीर हमारा॥

[73]

आयौ दिन गौने कै हो, मन होत हुलास।
डोलिया उठावे बीजा बनवाँ हो, जहँ कोई न हमार॥
पइयाँ तोरी लागौं कहरवा हो, डोली धर छीन बार।
मिल लेवैं सखिया सहेलर हो, मिलौं कुछ परिवार॥
दास कबीर गावैं निरगुन हो, साधो करि ले बिचार।
नरम-गरम सौदा करि ले हो, आगे हाट ना बाजार॥

[79]

नाहीं धर्मी नाहीं अधर्मी, ना मैं जती न कामी हो।
ना मैं कहता ना मैं सुनता, ना मैं सेवक स्वामी हो।
ना मैं बंधा ना मैं मुक्ता, ना मैं बिरत न रंगी हो।
ना काहू से न्यारा हुआ, ना काहू के संगी हो।
ना हम नरक लोक को जाते, ना हम सुर्ग सिधारे हो।
सब ही कर्म हमारा कीया, हम कर्मन तें न्यारा हो।
या मत को कोई बिरलै बूझै, सो अटर हो बैठे हो।
मत कबीर काहू को थापैं, मत काहू को मेटे हो॥

[87]

गगनघटा घहरानी साधो, गगनघटा घहरानी।
पूरब दिस से उठी है बदरिया, रिमझिम बरसत पानी।
आपन-आपन मेंड़ सम्हारो, बह्यौ जात यह पानी।
सुरत-निरत का बेल नहायन, करै खेत निर्वानी।
धान काट मार घर आवै, सोई कुसल किसानी।
दोनों थार बराबर परसैं, जेवैं मुनि और ज्ञानी॥

[88]

आज दिनके मैं जाऊँ बलिहारी।
पीतम साहेब आहे मेरे पहुना, घर-आँगन लगे सुहौना।
सब प्यास लगे मंगल गायन, भये मगन लखि छवि मनभावन।
चरन पखारूँ बदन निहारूँ, तन-मन-धन सब साईं पै वारूँ।
जा दिन पाये पिया धन सोई, होत अनंद परम सुख होई।
सुरत लगी सत नाम की आसा, कहै कबीर दासन के दासा॥

[92]

चरखा चलै सुरत बिरहिन का।
काया नगरी बनी अति सुन्दर, महल बना चेतन का।
सुरत भाँवरी होत गगन में, पीढ़ा ज्ञान-रतन का।
मिहीन सूत बिरहिन कातैं, माँझा प्रेम भगति का।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, माला गूँथो दिन रैन का।
पिया मोर ऐहैं पगा रखिहैं, आँसू भेंट देहौं नैन का॥

[94]

अवधू बेगम देस हमारा।
राजा-रंक-फकीर-बादसा, सबसे कहौं पुकारा।
जो तुम चाहो परम पद को, बसिहो देस हमारा॥
जो तुम आए झीने झोके, तजो मन की भारा।
धरन-अकास-गगन कछु नाहीं, नहीं चंद्र नहिं तारा॥
सत्त-धर्म की हैं महताबें, साहेब के दरबारा।
कहैं कबीर सुनो हो प्यारे, सत्त-धर्म है सारा॥

[97]

साहेब हममें साहेब तुममें, जैसे प्राना बीज में।
मत कर बंदा गुमान दिल में, खोज देख ले तन में।

कोटि सूर जहँ करते झिलमिल, नील सिंध सोहे गगन में।
सब ताप मिट जाँय देही के, निर्मल होय बैठी जग में।
अनहद घंटा बजै मृदंगा, तन सुख लेहि पियार में।
बिन पानी लागी जहँ बरषा, मोती देखि नदीन में।
एक प्रेम ब्रह्मांड छाय रह्यो है, समझे विरले पूरा।
अंध भेदी कहा समझेंगे, ज्ञान के घर तैं दूरा।
बड़े भाग अलमस्त रंग में, कबिरा बोलै घट में।
हंस-उबारन दुःख-निवारन, आवागमन मिटै छन में॥

[108]

अवधू मेरा मन मतिवारा।
उन्मुनि चढ़ा गगन-रस पीवै, त्रिभुवन भया उजियारा।
गुड़ करि ज्ञान ध्यान करि महुवा, भव-भाठी करि भारा।
सुषमन-नारी सहज समानीं, पीवै पीवनहारा।
दोई पुड़ जोड़ि चिगाई, भाठी चुआ महारस भारी।
काम-क्रोध-दुइ किया पलीता, छूटि गई संसारी।
सुनि मंडल में मैंदला बाजै, तहँ मेरा मन नाचै।
गुरुप्रसादि अमृत फल पाया, सहजि सुषमनां काछै।
पूरा मिल्या तबै सुख उपज्यो तप की तपनि बुझानी।
कहै कबीर भवबंधन छूटै, जोतिहि जोति समानी॥

[112]

अवधू, कुदरति की गति न्यारी।
रंक निवाज करै वह राजा, भूपति करै भिखारी॥
ये ते लवंगहिं फल नहिं लागे, चंदन फूल न फूलै।
मच्छ शिकारी रमै जंगल में, सिंह समुद्रहि झूलै॥
रेड़ा रूख भया मलयागिर, चहूँ दिसि फूटी बासा।
तीन लोक ब्रह्मांड खंड में देखै अंध तमासा॥
पंगुल मेरु सुमेर उलंघै त्रिभुवन मुक्ता डोलै।
गूँगा ज्ञान-विज्ञान प्रकासै अनहद बानी बोलै॥
बाँधि अकास पताल पठावै सेसे सरग पर राजै।
कहै कबीर राम हैं राजा जो कछु करें सो छाजै॥

[117]

धरती-गगन-पवन नहिं होता, नहीं तोया नहिं तारा।
तब हरि हरि के जन होते, कहै कबीर बिचारा॥

जा दिन कृत्तम नां हुता, होता हट न पट।
हुता कबीरा राम-जन, जिन देखे अवघट घट॥

[119]

अवधू, ऐसा ग्यान बिचारं।
भेरं चढ़े सु अधधर डूबै, निराधार भये पारं॥
अधर चले सो नगरि पहूँते बाट चले ते लूटे।
एक जेवड़ी सब लपटौंनें के बाँधे के छूटे॥
मंदिर पैसि चहूँ दिसि भीगे, बाहरि रहे तो सूषा।
सिर मारे ते सदा सुखारे, अनमारे ते दूषा॥
बिन नैनन के सब जग देखै, लोचन अछते अंधा।
कहै कबीर कछु समझि परी है, यह जग देख्या धंधा॥

[122]

संतो यह अचरज भो भाई, कहौं तो को पतिआई॥
एकै पुरुख एक है नारी, ताकर करहु बिचारा।
एकै अंड सकल चौरासी, मार्ग भूल संसारा॥
एकै नारी जाल पसारा, जग में भया अँदेसा।
खोजत काहू अंत न पाया, ब्रह्मा-बिस्नु महेसा॥
नाग-फाँस लीन्हें घट भीतर, मूसि सकल जग खाई।
ज्ञान खंग बिन सब जग जूझै, पकरि काह नहिं पाई॥
आपहि मूल फूल-फुलवारी, आपहि चुनि चुनि खाई।
कह कबीर तेई जन उबरे, जेहिं गुरु लिये जगाई॥

[130]

रहना नहिं देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया, बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी उलझ-पुलझ मरि जाना है।
यह संसार झाड़ औ झाँखर, आग लगे बरि जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सतगुरु नाम ठिकाना है॥

[134]

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फाँसि लिए कर डोलै, बोलै मधुरी बानी॥

केशव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत होइ बैठी, तीरथ हू में पानी॥
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रहमा के ब्रहमानी।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी॥

[137]

बहुरि नहिं आवना या देस।
जो जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं संदेस।
सुर-नर-मुनि और पीर औलिया देवी-देव-गनेस।
धरि धरि जनम सबै भरमे हैं, ब्रह्मा-बिस्नु-महेस।
जोगी जंगम और संन्यासी, दीगंबर दरबेस।
चुंडित-मुंडित-पंडित लोई, सुर्ग-रसातल सेस।
ग्यानी गुनी चतुर औ कविना, राजा-रंक-नरेस।
कोई रहीम कोइ राम बखानै, कोई कहै आदेस।
नाना भेष बनाय सबै मिलि, ढूँढ़ि फिरे चहुँ देस।
कहैं कबीर अंत ना पैहौ, बिन सतगुरु उपदेस॥

[139]

भारी कहौं तो बहु डरौं, हलका कहौं तो झूंठा।
मैं का जांणों रामकूँ नैनूं कबहूँ न दीठा॥ 1॥
ऐसा अद्भुत जिनि कथै, अद्भुत राखि लुकाइ।
वेद कुरानौं गमि नहीं, कहयां न को पतिआइ॥ 2॥
करता की गति अगम है, तूं चल अपणैं उनमान।
धीरैं धीरैं पाँव दे, पहुँचैंगे परवान॥ 3॥

[140]

ऐसा भेद बिगूचन-भारी।
बेद-कतेब दीन अरु दुनियां, कौन पुरुष कौन नारी॥
एक बूँद एकै मल-मूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जोतिथैं सब उत्पन्ना, को बाह्मन को सूदा॥
रज-गुन ब्रह्मा तम-गुन संकर, सत-गुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक नाम जपहु रे, हिंदू तुरक न कोई॥

माटी का प्यंड सहजि उपर्पनां, नाद रु ब्यंद समांनां।
बिनसि गयां थैं का नांव धरिहौ, पढ़ि गुनि भ्रंम जांनां॥

[147]

बाबा अगम-अगोचर कैसा, तातें कहि समझाओं ऐसा।
जो दीसै सो तो है नहीं, है सो कहा न जाई।
सैना-बैना कहि समझाओं, गूँगे का गुड़ भाई।
दृष्टि न दीसै मुष्टि न आवै, बिनसौं नाहिं नियारा।
ऐसा ज्ञान कथा गुरु मेरे, पंडित करौ बिचारा॥

[153]

पंडित बाद बदंते झूठा।
राम कह्याँ दुनियाँ गति पावै
खाँड कह्याँ मुख मीठा॥
पावक कह्याँ पाव जे दाझै,
जल कहि त्रिषा बुझाई।
भोजन कह्याँ भूख जे भाजै,
तो सब कोइ तिरि जाई॥
नरक साथि सूवा हरि बोले,
हरि परताप न जानै।
जो कबहूँ उड़ि जाइ जँगल में,
बहुरि न सुरतैं आनै॥
साँची प्रीति विषै मायासू,
हरि भगतनि-सूँ दासी।
कहै कबीर प्रेम नहिं उपज्जौ,
बांध्यौ जमपुरि जासी॥

[156]

चलन चलन सबको कहत है,
नाँ जानौं बैकुंठ कहाँ है।
जोजन एक प्रमिति नहि जान,
बातनि ही बैकुंठ बखानैं॥
जब लग है बैकुंठ की आसा,
तब लग नहिं हरिचरन निवासा॥
कहें-सुनें कैसे पतिअइये,
जब लग तहाँ आप नहिं जइये॥
कहैं कबीर यहु कहिये काहि,
साधो संगति बैकुंठहि आहि॥

[163]

मेरा-तेरा मनुआँ कैसे इक होई रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की देखी।
मैं कहता सुरझावनहारी, तू राख्यौ उरझाई रे।
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोई रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोही रे।
जुगन जगन समुझावत हारा, कही न मानत कोई रे।
तू तो रंडी फिरै बिहंडी, सब धन डारे खोई रे।
सतगुरु धारा निर्मल बाहै, बामैं काया धोई रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होई रे॥

[165]

मोरी चुनरी में परि गयो दाग पिया।
पाँच तत्त की बनी चुनरिया, सोरहसै बँद लागे जिया।
यह चुनरी मोरे मैकेतें आई, ससुरे में मनुवाँ खोय दिया।
मलि मलि धोई दाग न छूटे, ज्ञान को साबुन लाय पिया।
कहैं कबीर दाग कब छुटिहै, जब साहब अपनाय लिया॥

[168]

साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहौ तौ मारन धावै झूँठे जग पतियाना।
हिंदू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमाना।
आपस में दोऊ लड़े मरतु हैं मरम कोई नहिं जाना।
बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी प्रात करैं असनाना।
आतम-छोड़ि पषानै पूजैं तिनका थोथा ज्ञाना।
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन में बहुत गुमाना।
पीपर-पाथर पूजन लागे तीरथ-बर्त भुलाना।
माला पहिरे टोपी पहिरे छाप-तिलक अनुमाना।
साखी सब्दै गावत भूले आतम खबर न जाना॥
घर-घर मंत्र जो देन फिरत हैं माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े अंतकाल पछिताना।
बहुतक देखे पीर-औलिया पढ़ै किताब-कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावैं उनहूँ खुदा न जाना।
हिंदू की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वाँ झटका मारे आग दोऊ घर लागी।
या बिधि हँसत चलत हैं हमको आप कहावैं स्याना।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इनमें कौन दिवाना॥

[212]

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गाँठ गठियायो, बार-बार वाको क्यों खोले।
हलकी थी जब चढ़ी तराज, पूरी भई तब क्यों तोले।
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले।
तेरा साहब है घट माँही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिलि गये तिल ओले॥

[224]

तोको पीव मिलैंगे घूँघट के पट खोल रे।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन-जोबन की गरब न कीजै, झूठा पँचरँग चोल रे।
सुन्न महल में दियना बार ले, आसा सों मत डोल रे।
जोग जुगत सो रंगमहल में, पिय पाई अनमोल रे।
कहैं कबीर आनंद भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

[247]

अरे इन दोहुन राह न पाई।
हिंदू अपनी करे बड़ाई गागर छुवन न देई।
वेस्या के पाइन-तर सोवै यह देखो हिंदुआई।
मुसलमान के पीर-औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि में करै सगाई।
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेवन बैठीं घर-भर करै बड़ाई।
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई॥

[254]

यह जग अंधा मैं केहि समझावों।
इक-दुई हों उन्हें समुझावों सब ही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा ढरकि परै जस ओस के बुंदा।
गहरी नदिया अगम बहै धरवा खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहिं आवत दियना बारि के ढूँढ़त अंधा।
लागी आग सकल बन जरिगा बिन गुरु ग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो इक दिन जाय लँगोटी झार बंदा॥

munotes.in

शब्दार्थ : जियरा - जी, हृदय। जक्त - जगत्। गुन - नाव खींचने की रस्सी। सुन्न में - शून्य में सुधि या खोज। घर घर दीपक... - प्रत्येक घर में दीपक जलता है, अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति के भीतर भगवान की ज्योति है। लखत... - देखने का अभ्यास करने से वह दिखाई देता है। जीते जी... - जो जीते जी ही मर गया—इच्छा-द्वेष से परे हो गया, वह फिर नहीं मरने का। जोगी... - योगी भगवान को न पाकर वियोग में पड़े रहते हैं और घर को—अपने लक्ष्य को—दूर बताते हैं। दिच्छा - दीक्षा, शिष्य को मंत्र देना। घालिहै - चौपट करेगा। मूर सजीवन - संजीवनी बूटी। पाहन - पत्थर - मूर्ति, शालिग्राम आदि। ऐसन - कबीर का साहब ऐसा सलोना (सुन्दर) है कि उसे पाने के लिए न जोग की, न जाप की, न पुण्य की, न पाप की ही जरूरत है, वह सहज ही मिलता है। सत्त प्रेम - वास्तविक प्रेम। सुरत-कलारी...तोले - सुरति रूपी कलारी (मद्य बेचने वाली) ने मत्त होकर बिना तौले ही बहुत पी लिया। तिल ओले - तिल की ओट में। उनको - उनका नाम लेना उचित नहीं; क्योंकि नाम लेने से भ्रम हो सकता है कि वे मुझसे भिन्न हैं। तरवर - संसार : मूल बिना खड़ा है अर्थात् मायाजन्य है। गुरु - भगवान। चेला - जीव। रस चुन खाया - भोग भोगता रहा। गुर...खेला - भगवान लीला करते रहे। मूरत...बलिहारी - समस्त मूर्तियों यानी रूपों में वह अमूरत (अमूर्त, रूपहीन) होकर वर्तमान है, बलिहारी है उसकी इस मूर्ति (स्वरूप) की। भई बलमासी - बालम को पाने की उत्कट अभिलाषा वाली हो गई। कनवा फड़ाय - कनफटे योगी कान चीरकर कुंडल धारण करते हैं। धुनिया रमौले - धूनी रमाई। लबरा - झूठा। बढ़ौले - बढ़ाया। गैले - गया। पौंगड़ा (पौगंड) - बालक। अटर - अटल। गगनघटा (समाधि पक्ष में) - समाधि-काल की धर्म-मेघ की वृष्टि। पूरब दिस से - पूर्वजन्म के पुण्य से। मेंड़ सँभालने से संयम-नियम की ओर इशारा है। धान काटना - परम पुरुषार्थ को पाना। दोनों थार -

सुरति-निरति की थालियाँ। सुरत भाँवरी = प्रेम की भाँवर जो ब्याह के समय वर-कन्या देते हैं। माँझा = वर-कन्या के वे पीले वस्त्र जो हल्दी चढ़ने पर पहने जाते हैं। माला गूँथो... = दिन और रात की माला (वर-माला) गूँथूँ (उन्हीं महीन सूतों से)। पगा रखिहैं = चरण रखेंगे, पधारेंगे। आँसू... = आँखों का आँसू उपहार दूँगा। बेगम देस = बिना गम का देश; समासोक्ति से बेगम (रानी) का देश जिसके लिए बादशाह और राजा व्याकुल रहते हैं। मन की भारा = मन की कल्पना को बोझ। जो तुम... = तुम यदि सूक्ष्म रूप में आए हो तो मानसिक कल्पनाओं को छोड़ दो। महताबें = ज्योतियाँ। उन्मुनि = समाधि। गगन रस = शून्य चक्र में प्राप्य आनन्द, भावाभाव-विनिर्मुक्ता अवस्था। गुड़ करि...संसारी = (मदिरा रूपक है) ज्ञान के गुड़ और ध्यान के महुआ से संसार-रूपी भट्ठी में महारस (आनन्द) की मदिरा चुआई। गुरुप्रसादि...काछै = गुरु के प्रसाद से सहज ही सुषुम्ना के पास मैंने अमृत रस पा लिया। भेरे = भेल पर, छोटी नाव पर। निसधार = शरीर को सब कुछ न समझकर इसके भीतर वाले चैतन्य को आधार करने वाले। अधर चले = जो लोग अधर मार्ग से या शून्य मार्ग से चले वे अर्थात् नगर में अपने गंतव्य स्थान तक पहुँच गए। बाट = रास्ता, बाह्याचार। मंदिर = घर। चहूँ दिसि भीगे = जो लोग विषय-वासना के मंदिर में घुसे वे भीग गए, पर जो बाहर रहे वे सूखे रहे। सरि = चिता पर, भगवद्विरह की आग से मतलब है। दूधा = दुखी रहे। बिन नैनन = बाहरी आँखों के अभाव में और ज्ञान-चक्षु से। लोचन अछते = बाहरी आँखों के रहते हुए। मूसि = ठगकर। देस बिराना = (1) वीराना देश, मरुभूमि, (2) दूसरे का देश, (3) अज्ञात देश। आदेस = गोरखपंथी लोग 'आदेश'-आदेश कहते हैं। जाणों = जानूँ। दीठ = दिखाई दिया। गमि = पहुँच। कहयाँ = कहने पर। आपणैं उनमान = अपने अनुमान से। परवान = परिणाम में, अन्त में। बिगूचन = उलझन। कतेब = किताब, कुरान। सूदा = शूद्र। ब्यंद = बिंदु। विनसि... = जो नष्ट हो गया उसका क्या नाम दूँ? दृष्टि...आवै = न आँखों से दिखाई देता है, न मुट्ठी में पकड़ा जाता है, अदृश्य और अग्राह्य। करकै जानै = आदमी के साथ जब तक तोता रहता है तब तक हरिनाम लेता है। पर जब कभी जंगल में उड़ जाता है तो याद भी नहीं करता। डिंभ धरि बैठे = दंभ धारण करके बैठे हैं। मेहर = दया। मदवा..तौले = बिना तोल अपरिमित मद पी गई। ओले = ओट में। पानी के घोड़ा = क्षणभंगुर शरीर। पवन-असवरवा = प्राण। गहरी नदी = माया प्रवाह। खेवनहारा = जीवात्मा। घर...अंधा = घर में पड़ी हुई वस्तु के नजदीक तो जाता नहीं, यह अंधा (मुग्ध मनुष्य) सारी दुनिया में उसे दीया जलाकर खोजता फिरता है। लागी आग = मोह की आग लगी हुई है।

❖❖❖❖

इकाई - ४ मलिक मुहम्मद जायसी

(नागमती वियोग खंड)

इकाई - ५ मलिक मुहम्मद जायसी (पद्मावत)

लेखक - डॉ. प्रवीण चंद्र बीष्ट

mumotes.in

४

मलिक मोहम्मद जायसी
पद्मावत (काव्य ग्रंथ) (नागमती वियोग खंड)

ईकाई की रूपरेखा :

४.० इकाई की उद्देश्य
४.१ प्रस्तावना
४.२ कवि परिचय
४.३ नागमति विरह वर्णन
४.४ जायसी के काव्य में रहस्यवाद
४.५ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण
४.६ सारांश
४.७ लघुत्तरीय प्रश्न
४.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
४.९ संदर्भ पुस्तकें

४.० इकाई की उद्देश्य

इन काव्य खंडों के माध्यम से विद्यार्थी सामाजिक, सांस्कृतिक, आत्मिक और वियोगावस्था आदि जैसे संवेदनात्मक पक्षों का अवलोकन कर अपने उत्तरदायित्वों के प्रति जागृति होंगे। विद्यार्थी उन सभी मार्मिक अनुभूतियों को महसूस करेंगे जिन्हें कवि ने रेखांकित किया है। विद्यार्थियों में इन खंडों में व्यक्त भाव व शिल्प के प्रति समझ विकसित होगी। छात्रों में मध्यकालीन काव्य के प्रति रूचि का निर्माण होगा। समाज के प्रति संवेदनशीलता जागृत होगी।

४.१ प्रस्तावना

पद्मावत नामक काव्य खंड में कुल ५७ अध्याय हैं। यदि उपसंहार को भी इसमें शामिल किया जाय तो ५८ अध्याय हो जाते हैं। इनमें से हम यहाँ पाठ्यक्रम को केन्द्र में रखकर सिर्फ दो खंडो (नागमती वियोग खंड) तक अपनी बात को सीमित रखेंगे। इसके अंतर्गत कवि परिचय, कविता का भावार्थ, स्पष्टीकरण तथा संभावित प्रश्नों का उल्लेख किया गया है।

जायसी संत साहित्य के प्रेममार्गी शाखा के प्रमुख कवि थे। उन्होंने पद्मावती के माध्यम से नायक रत्नसेन और नायिका पद्मावती की प्रेमकथा को रोचकता के साथ अभिव्यक्त कर प्रेम

muonotes.in

की साधना का संदेश दिया है। यह एक ऐतिहासिक कहानी है। इसका नायक रत्नसेन चितौड़ का महाप्रतापी राजा है। पद्मावती उसकी वह रानी है जिसके सौंदर्य की चर्चा सुन तत्कालीन सुलतान अलाउद्दीन अपनी विशाल सेना लेकर पद्मावती को प्राप्त करने के लिए चितौड़ पर चढ़ाई कर देता हैं किंतु युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरांत भी वह पद्मावती को प्राप्त नहीं कर पाता है क्योंकि उसके पद्मावती तक पहुँचने से पहले ही पद्मावती जौहर कर लेती है। यह एक रोचक लोक-कथा है जिसे अवधी भाषा में लिखा गया है।

४.२ कवी परिचय

प्रेम की पीर के अमर गायक कवि मलिक मोहम्मद जायसी का जन्म सन् १४८० ईस्वी के लगभग हुआ था। उन्होंने अपने 'आखिरी कलाम' नामक ग्रंथ में अपने जन्म का संकेत दिया है। वे कहते हैं – 'भा अवतार भोर नब सदी। तीस बरस ऊपर किव बदी।' कुछ विद्वानों ने गाजीपूर और कुछ ने जायस नगर को इनका जन्म स्थान माना है। वे कहते हैं कि स्वयं ही जायसी ने जायस नगर को अपना निवास स्थान कहा है - 'जायस नगर मोर अस्थानू'। इनके पिता का नाम शेख ममरेज था और माता का नाम अभी तक भी पता नहीं चल पाया है। इनके माता-पिता इन्हें बचपन में ही अकेला छोड़कर स्वर्गवासी हो गए थे। अनाथ बालक साधु संतों की संगत में ही पला बड़ा। सूफी संप्रदाय के प्रसिद्ध पीर, शेख मोहदी इन के गुरु थे। जायसी की शिक्षा के संबंध में कुछ अधिक पता नहीं चलता है परंतु इतना निश्चित है कि जायसी बहुत बड़े विद्वान थे। उन्हें ज्योतिष, वेदांत, दर्शन, रसायन और हठयोग का भी पर्याप्त ज्ञान था।

जायसी बचपन से ही कुरूप थे। चेचक के प्रकोप से उनकी बाई आँख और कान बचपन में ही उनसे छिन चुके थे। कहा जाता है कि शेर शाह बादशाह इनके रूप को देखकर हँस पड़ा था, तब इन्होंने कहा था 'मोहि का हँससि, के कोहरहिं?' अर्थात तुम मुझ पर हँसे हो अथवा उस कुम्हार (ईश्वर) पर, जिसने मुझे बनाया है। यह सुनकर बादशाह बहुत लज्जित हुआ। जायसी गाजीपुर और भोजपुर के राजा के आश्रय में रहते थे। बाद में वे अमेठी के राजा मान सिंह के अनुनय विनय पर उनके दरबार में चले गए थे। अमेठी के पास के वन में ही वे रहते थे। एक दिन एक शिकारी की गोली से उनकी मृत्यू हो गई अर्थात् सन् १५४२ के लगभग इन्होंने अपने शरीर का त्याग कर दिया।

मलिक मोहम्मद जायसी की रचनाएँ :

जायसी की रचनाओं के विषय में विद्वानों में मतभेद है। कुछ उपलब्ध तथ्यों के आधार पर जायसी के निम्नलिखित ग्रंथ स्वीकार किए गए है -

१. अखरावट - इस ग्रंथ में ईश्वर, जीव और सृष्टि आदि पर सिद्धांत व्यक्ति किए गए हैं।
२. आखिर कलाम : इसमें कयामत (प्रलय) का वर्णन किया गया है।
३. चित्ररेखा : यह प्रेमकाव्य है। इसमें कन्नौज के राजकुमार प्रीतम सिंह और चंद्रपुर के राजा चंद्रभानु की कन्या चित्ररेखा की प्रेम कहानी वर्णित है।
४. पद्मावत : इसमें चितौड़ के राजा रत्नसेन और सिंहलद्वीप के राजा गंधर्व सेन की पुत्री पद्मावती की प्रेम कहानी का वर्णन है। इसे अन्योक्ति काव्य के अंतर्गत रखा जा सकता है।

इसके अतिरिक्त जायसी की अनेक अन्य रचनाएँ भी हैं लेकिन उनकी उपलब्धता न होने के कारण उनका ज़िक्र यहाँ नहीं किया गया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्रेम मार्ग के धीर गंभीर एवं अनन्य आराधक मलिक मोहम्मद जायसी हिंदी साहित्य के जगमगाते रत्न की तरह हैं। प्रेम मार्गी शाखा के प्रवर्तक जायसी की सबसे बड़ी विशेषता यह हैं कि उन्होंने मुसलमान होते हुए भी हिंदू कथा को अपने काव्य का आधार बनाया। सूफी कवि जायसी प्रेम की पीर और विरह वेदना में पूर्णतया समर्पित हैं। प्रेम को ईश्वर का रूप सिद्ध करने वाले जायसी सदियों तक हिंदी काव्य के क्षेत्र में अपना परचम लहराते रहेंगे।

४.३ नागमति विरह वर्णन

प्रेम की पीर के अमर गायक महाकवि मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' हिंदी साहित्य का प्रथम निद्रोष और सरस महाकाव्य है। मसनवी पद्धति पर लिखे इस ग्रंथ में कवि ने हिंदू राजा रत्नसेन और पद्मावती के लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम का वर्णन किया है। इस काव्य में नागमती का विरह वर्णन बहुत ही मर्मस्पर्शी बन गया है।

कविवर जायसी को विप्रलंब श्रृंगार के चित्रण में बहुत अधिक सफलता मिली है। पद्मावत में दो स्थानों पर विरह वर्णन मिलता है। जिसमें एक तरफ नागमती का विरह वर्णन है तो दूसरी तरफ पद्मावती व नागमती का संयुक्त विरह वर्णन को दर्शाया गया है। इस ग्रंथ में नागमती प्रेषित पतिका अर्थात केवल अपने पति के प्रेम भाव रखने वाली नायिका है। राजा रत्नसेन जब पद्मावती की प्राप्ति की इच्छा से सिंहलद्वीप चले जाते हैं, तब रानी नागमती इस तरह व्यथित होती है कि उसके आँसू रूकने का नाम ही नहीं लेते। उसके विरह से मनुष्य जाति ही नहीं बल्कि प्रकृति एवं पशु-पक्षी अर्थात संपूर्ण सृष्टि के सभी तत्व व्यथित हैं। नागमती का विरह वर्णन के संदर्भ में निम्नलिखित बातों को देखा जा सकता है -

सर्वप्रथम हम नागमती के दुख की गहनता एवं व्यापकता को केंद्र में रखकर बात करें तो नागमती के विरह की वेदना गहन एवं व्यापक है। नागमती का विरह एक पतिव्रता नारी का विरह है इसीलिए यह अब सिर्फ नागमती का विरह न रहकर भारतीय आदर्श नारियों के विरह का भी प्रतिनिधित्व करता हैं। पति पर सर्वस्व समर्पित करने वाली नारी की यह दशा सभी को व्यथित कर देने वाली है। प्रिय वियोग में जलकर राख होने पर भी पतिव्रता नारी अपने शरीर की राख पति के चरणों में ही डालना चाहती है। इस स्थिति को कवि ने नागमती के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया है -

'यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन! उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाँव।'

यहाँ नागमती को एक सामान्य नारी के रूप में अभिव्यक्ति दी गई है जिसके कारण उसके विरह में गहनता, व्यापकता, तीव्रता और प्रभावपूर्णता द्दष्टव्य होती है। नागमती राजसी ठाठ, वैभव और मान मर्यादा का परित्याग कर सामान्य रूप धारण कर लेती है क्योंकि यदि वह

रानी के रूप में अपनी व्यथा कथा कहती है तो शायद उस पर कोई विश्वास ही न करता बल्कि सभी उसका मजाक उड़ाने लगते। इसीलिए पद्मावत में नागमती राजरानी नहीं बल्कि एक अनाथ पराश्रिता और दुखी नायिका के रूप में उभरकर आती है। जो वर्षा ऋतु के आने पर इस चिंता में लगी रहती है कि पति के बिना उसके छप्पर को कौन छवायेगा।

'तपै लागि अब जेठ-असाढ़ी। मोहि पिउ बिनु छाजनि भई गाढ़ी।'

जायसी ने ही पद्मावत के नागमती वियोग खंड के अंतर्गत नारी के विरह की समस्त दशाओं का अंकन किया है। उन्होंने नागमती के माध्यम से विरह की समस्त दशाओं जैसे चिंता, दैन्य, निर्वेद, विषाद, शंका, त्रास, आवेग, स्मृति, उन्माद, व्याधि आदि का मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। उन्होंने बारहमासा के आधार पर नागमती के विरह का अद्भुत चित्रण किया है जो अपने आप में बेजोड़ बन पड़ा है।

जायसी ने प्रकृति के संवेदनात्मक रूप को भी बड़ी ही सटीकता के साथ स्पष्ट करने का प्रयास किया है। इनके यहाँ नागमती प्रकृति और जगत की प्रत्येक क्रिया को सजग होकर देखती है। बाहरी जगत का उल्लास नागमती को अपनी संयोगावस्था का स्मरण कराता है जो उसके वियोग को और भी तीव्र कर देता है। इन्होंने प्रकृति के संवेदनात्मक रूप को बहुत ही प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया है। नागमती को कभी पशु-पक्षी तथा प्रकृति दुखी प्रतीत होती हैं तो कभी वह प्रकृति के समक्ष अपनी वेदना व्यक्त करती है। वह अपने पति की खोज में वन-वन डोलती फिरती है, लेकिन पति तक पहुँचने में उसे सफलता नहीं मिल पाती तब वह एक कौवे के माध्यम से अपना संदेश भेजती है -

पिऊ सौ कहो संदेसड़ा, ए भौंरा! ए काग।
सो धनि विरह जरि मुई, ताहि का धुआँ हम लाग।।

जायसी जी ने समय-समय पर प्रकृति में आ रहे परिवर्तनों की तरह ही नागमती के विरह में भी हो सके परिवर्तनों को देखा है। वे देख रहे हैं कि नागमती को एक ओर कार्तिक मास की शरद कालीन चंद्रमा की शीतल चाँदनी में जल रही है तो दूसरी ओर अगहन की काली व लंबी रातें काटना उसके लिए मुश्किल हो जाती हैं। पूस महीने के आगमन पर उसका ह्रदय ठंड से थर-थर काँप रहा है। तो चैत के महीने में बसंत ऋतु का हरा भरा संसार भी उसे उजाड़ सा लगने लगता है। वैशाख के महीने में चोआ, चीर और चंदन उसे अंगारे की तरह लगते हैं। इसीलिए वह अपने पति से प्रार्थना करती है -

तोहि दरसन होइ सीतल नारी, आइ आगि तें करुँ फुलवारी।

जेठ की तेज गर्मी से नागमती के शरीर का माँस तक सूख जाता है और आषाढ़ के महीने में वर्षा के साथ-साथ उसके नेत्र भी बरस रहे हैं।

बरसै मेह, चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होई रहि बिनु नाहा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रकृति के बदलते रहने के साथ-साथ नागमती की विरह वेदना भी बदलती रहती है। जायसी के बारहमासे की कल्पना अद्भुत है। यह उनकी कल्पना शक्ति एवं सूक्ष्म निरीक्षण का महत्वपूर्ण दस्तावेज है।

नागमती का प्रेम आदर्श प्रेम का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी विरह-वेदना इस बात को स्पष्ट करती है कि वह राजा रत्नसेन के प्रति एकनिष्ठ थी। नागमती में भारतीय पतिपरायण नारी का आदर्श रूप परिलक्षित होता है। वह विरह अवस्था में कभी पति का स्मरण करती है तो कभी चिंता, शंका से व्याकुल हो उठती है। वह कभी कौवे के माध्यम से संदेश भेजती है तो कभी विरहग्नि में जलकर राख हो जाना चाहती है। नागमती कभी पति की रीझती हुई भाव भंगिमा में दिखाई देती है तो कभी उसे निष्ठुर कहकर अपनी दैन्य अवस्था को व्यक्त करती है -

अबहूँ मया - दिस्टि करि, नाहा निठुर! घर आउ।
मँदिर उजार होत है, नव कै आइ बसाउ।।

इस प्रकार नागमती की स्थितियाँ नारी के आदर्श को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं। उसका पतिपरायण रूप वास्तव में सराहनीय है। इस संदर्भ में स्वयं जायसी कहते हैं -

मुहमद सती, सराहिये, जरै जो अस पिय लागि।

जायसी ने पद्मावत की कथा में लौकिक के माध्यम से अलौकिक का दर्शन कराने का प्रयास किया है। उन्होंने चितौड़ को तन, राजा रत्नसेन को मन, नागमती को दुनिया धंधा, हीरामन तोते को गुरु और पद्मावती को परमात्मा माना है। जीव गुरु के बताए मार्ग पर चलकर अनेक कठिनाइयों का सामना करते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचता है। नागमती को दुनिया धंधा माना है जिसमें फँसकर साधक ब्रह्म की प्राप्ति नहीं कर सकता है। जैसे -

नागमती यह दुनिया धँधा। बाँचा सोई न एहि चित बँधा।

यहाँ राजा रत्नसेन परमात्मा रूपी पद्मावती की प्राप्ति के लिए नागमती का त्याग कर देता है जो उसे अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करती है।

अंततः कहा जा सकता है कि नागमती के विरह वर्णन में आदर्श प्रेम को देखा जा सकता है। नागमति एक पति परायण नारी है। पद्मावत में जायसी ने अलौकिकता का समावेश कर सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति का परिचय दिया गया है।

४.४ जायसी के काव्य में रहस्यवाद

आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं - 'चिंतन के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, भावना के क्षेत्र में वही रहस्यवाद कहलाता है।' अद्वैतवाद ज्ञान और बुद्धि पर आधारित एक दार्शनिक सिद्धांत है। वह मनुष्य की बुद्धि के प्रयास व चिंतन का परिणाम है, उसमें अनुभूति और कवि-कल्पना नहीं

रहती। अतः अद्वैतवाद ज्ञान-क्षेत्र की वस्तु है। उसका आधार लेकर कल्पना या अनुभूति की अभिव्यक्ति होने पर उच्च कोटि के रहस्यवाद की प्रतिष्ठा होती है।

अद्वैतवाद के दो पक्ष है : आत्मा और परमात्मा की एकता तथा ब्रह्म और जगत की एकता। जायसी उच्च कोटि के रहस्यवादी कवि है। उन्होंने जीव और परमात्मा के पारस्परिक प्रेम-संबंध की झाँकी को 'दांपत्य भाव' के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने पद्मावती को परमात्मा और रत्न सेन को जीव के रूप में अभिव्यक्त किया है। जीव रूपी रत्नसेन परमात्मा स्वरूप पद्मावती की प्राप्ति के लिए निकलता है। इस बीच उसे अनेक संघर्षो को झेलना पड़ता है। लेकिन अंततः सभी प्रकार की परेशानियों को पाटते हुए अपने लक्ष्य तक पहुँचने में उसे सफलता मिलती है। इस पूरी कथा को जायसी ने रूपक के माध्यम से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

जायसी ने संपूर्ण प्रकृति में पद्मावती के सौंदर्य को महसूस किया है तथा प्रकृति के प्रत्येक तत्व को, उस सौंदर्य की प्राप्ति के लिए आतुर और प्रयत्नशील दिखाया है। मानसरोदक खंड में कवि ने मानसरोवर का इसी रूप में वर्णन किया है -

सरवर रूप विमोहा, हिये हिलोरहिं लेइ।
पाँव छुवै मकु पावौं, यही मिस लहरहिं देइ।

जायसी के काव्य में मूलतः भावात्मक रहस्यवाद मिलता है। किंतु कहीं-कहीं साधनात्मक और प्रकृति मूलक रहस्यवाद के भी दर्शन हो जाते हैं।

भावात्मक रहस्यवाद जायसी के रहस्यवाद का मूलाधार रहा हैं। यह पूर्णतः प्रेम भाव पर आधारित है। इन्होंने परमात्मा को स्त्री रूप (पद्मावती) और जीव को पुरुष रूप (रत्न सेन) अभिव्यक्ति दी है। इन्होंने पद्मावती में ईश्वरीय सौंदर्य को देखा है इसीलिए वे कह उठते हैं -

रवि ससि नखत दिपहिं ओहि जोति। रतन पदारथ मानिक मोती।

पद्मावती के संबंध में कहा गया है कि पद्मावती जब स्नान करने के लिए मानसरोवर पर जाती है तब एक सखी का हार खो जाता है। उस हार को खोजने के लिए पद्मावती सरोवर में प्रवेश करती है। कहा जाता है कि तब मानसरोवर बहुत प्रसन्न होता है और कह उठता है कि मैंने जो चाहा था, वह प्राप्त हो गया है -

कहा मानसर चाह सो पाई। पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमल तिन्ह पायन्ह परसे, पावा रूप, रूप के दरसे।

जायसी ने कई जगह पर पद्मावती की अलौकिकता का वर्णन किया है। वे बताते हैं कि उनके अंगों से सृष्टि की अनेक दिव्य वस्तुओं का निर्माण हो जाता है -

नयन जो देखा कँवल भा, निर्मल नीर शरीर।
हँसत जो देखा हंस भा, दसन जोति नग हीर।

पद्मावती को परमात्मा के रूप में अभिव्यक्त किया गया है इसलिए उसके निवास स्थान सिंहल दीप को ईश्वर का स्थान मानते हुए जायसी ने परलोक का सुंदर चित्रण किया है, जो इस प्रकार है -

पथिक जो पहुँचे सहि कै धामू। दुख विसरै, सुख कोई बिसरामू।

जायसी के रहस्यवाद में भारतीय दर्शन एवं अद्वैत का पूर्ण प्रभाव दिखाई देता है। राजा रत्नसेन जब मानसरोवर पहुँचते हैं तो उन्हें सिंहलगढ़ और पद्मावती के देश का दर्शन होने लगता है। कवि का मानना है कि प्रिय तो ह्रदय में ही है किंतु बिना साधना या ज्ञान के उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती इसीलिए वे कहते हैं -

प्रिय हिरदय में भेंट न होई। को रे मिलाव कहों का रोई।

इस प्रकार जायसी का भावात्मक रहस्यवाद अधिक सशक्त एवं प्रभावशाली बन पड़ा है।

जायसी ने साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत रत्न सेन को योगी बनाकर पद्मावती की साधना के लिए प्रस्तुत किया है। ऐसे स्थानों पर साधनात्मक रहस्यवाद द्दष्टव्य होता है। जायसी ने पद्मावत के अंतर्गत यत्र-यत्र हठयोग से संबंधित क्रियाओं का भी उल्लेख किया है। कवि सिंहगढ़ का उल्लेख करते हुए कहता है -

नव पौरी बाँकी नव खंडा। नवौ जो चढ़ै जाइ बरम्हँडा।
नवौ खँड नव पौरी, और तहाँ बज्र केवार।
चारि बसेरे जो चढ़े, सत सौं उतरे पार।

जायसी ने हठयोग की समस्त परिभाषाओं को स्वीकार किया है। उन्होंने इडा, पिंगला और सुषुम्ना आदि का उल्लेख किया है। सूफियों में चार बसेरों शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारिफत को मान्यता दी हैं। शरीयत का अर्थ धर्म के अनुकूल आचरण करना, तरीकत - ईश्वर चिंतन करना, हकीकत त्रिकालज्ञ हो जाना और मरिफत वह अंतिम अवस्था है जहाँ पहुँचकर साधक ब्रह्म में लीन हो जाता है। इस तरह जायसी प्रेम के कवि होने पर भी भावनात्मक रहस्यवाद को स्वीकार करते हैं। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जायसी श्रेष्ठ रहस्यवादी कवि हैं। उनके रहस्यवाद में भारतीय दर्शन, अद्वैतवाद, सूफियों के माधुर्य भाव, शंकराचार्य के मायावाद और हठयोग के साधनात्मक रूप की स्पष्ट झलक मिलती है। उन्होंने ब्रह्म को प्राप्त करने की समग्र साधना पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

४.५ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण

नागमती - वियोग खंड

४.५.१ संदर्भ सहित व्याख्या

चढ़ा आसाढ़ गगन घन गाजा। साजा बिरह दुन्द दल बाजा।।
धूम साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए।।
खड़ग-बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुँन्द-बान बरसहिं घन घोरा।

ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी।।
दादुर, मोर, कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ।।
पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाय, मंदिर को छावा।।
अद्रा लाग, लागि भुई लेई। मोहिं बिनु पीउ को आदर देई।।

जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौं औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब।।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्यपुस्तक मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत के नागमती बिरह खंड से ली गई है।

प्रसंग : नागमती के वियोग खंड के अंतर्गत जिस बारहमासा का वर्णन किया गया है, उसका प्रारंभ यहीं से होता है। इसके अंतर्गत कवि आषाढ़ में होने वाले ऋतु परिवर्तन के साथ-साथ नागमती की विरहावस्था का भी वर्णन करता है।

व्याखा : कवि इस पद के माध्यम से यह बताने का प्रयास कर रहे हैं कि आषाढ़ का महीना आ गया है। आकाश में मेघ गरजने लगे हैं। बिरह ने युद्ध की तैयारी कर ली हैं और उसकी सेना आ पहुँची है। आकाश में काले और धौरे बादल सैनिकों की भाँति दौड़ने लगे हैं। और उनके मध्य उड़ने वाले बगुलों की पंक्तियों श्वेत ध्वजा के समान दिखाई दे रही हैं। मेघों के बीच चमकने वाली बिजली तलवार की समान लग रही है। घनघोर वर्षा की बूँदें बाणों के समान लग रहे हैं। चारों ओर से बादल घिर आए हैं। कंत मदन ने मुझे चारों ओर से घेर लिया हैं। अतः शीघ्र आकर उससे मेरी रक्षा करो। दादुर, मोर, कोयल तथा पपीहे आदि पक्षियों के स्वर मेरे कष्ट को और बढ़ा रहे हैं। बादलों के बीच से उभरने वाली बिजली को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि अब इस घट में प्राण अधिक समय तक नहीं रह पाएँगे। पुष्प नक्षत्र सिर पर आ चुका है और मैं अब तक अकेली हूँ अर्थात मेरे स्वामी यहाँ नहीं हैं। इस दशा में मेरी मंदिर को कौन छवाएगा, जिससे इस बरसते पानी में भीगने से बच सकूँ। आर्दा नक्षत्र लग गया है और संपूर्ण पृथ्वी में जल ही जल दिखाई दे रहा है। ऐसी स्थिति में मैं अकेली हूँ, मुझे बिना प्रियतम के कौन आदर देगा ?

जिनके प्रियतम घर पर हैं, वे सुखी हैं, वे गौरव के साथ अपने घर पर समय व्यतीत कर रहे हैं। मेरा तो प्यारा प्रियतम बाहर है, जिसकी याद में मैं अपना सारा सुख भूल चुकी हूँ।

विशेष :

१) नागमती को एक सामान्य स्त्री क तरह जीवन यापन करते हुए दिखाया गया है।
२) जायसी ने नक्षत्रों का जो क्रम पद्मावत के इस प्रसंग में दिखाया है इससे ज्ञात होता हैं कि उन्हें इनका पर्याप्त ज्ञान था।
३) अनुप्रास तथा सांगरूपक (विवाह में सैन्य दल का आरोप है) अलंकार का प्रयोग किया गया है।

४.५.२ संदर्भ सहित व्याख्या

तपै लागि अब जेठ-असाढ़ी। मोहि पिउ बिनु छाजनि भई गाढ़ी।।
तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भई बरखा, दुख आगरि जरी।।
बँध नाहि और कंध न कोई। बात न आव कहौं का रोई।।

साँठि नाहि जब बात को पूँछा ? बिनु जिउ फिरै मूँज-तनु छूछा।।
भा दुहेली टेक बिहूनी। थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी।।
बरसै मेह, चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा।।
कोरौं कहाँ ठाट नव साजा ? तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा।।
अबहूँ मया-दिस्टि करि, नाहा निठूर। घर आउ।।
मँदिर उजार होत है, नव कै आइ बसाउ।।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्यपुस्तक मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत के नागमती बिरह खंड से ली गई है।

प्रसंग : इन पंक्तियों के माध्यम से नागमती अपने प्रियतम को आगाह कर रही है कि अब जेठ का महीना आ गया है। घर में छप्पर न होने के कारण मेरे लिए यह गर्मी असहनीय हो गई है। अत: आकर इस समस्या का समाधान कीजिए।

व्याखा : नागमती कहती हैं कि अब उसके ह्रदय में विरह के कारण इतना ताप बढ़ गया है, जितना कि जेठ-आषाढ़ी तपने पर संसार का होता है। प्रियतम के बिना अकेले मेरे लिए घर की छप्पर कुछ छाने का कार्य कौन करेगा जिससे आने वाली वर्षा में मेरी रक्षा हो सके। वह कहती है कि मेरा शरीर तिनके के समान पतला तथा स्वत्वहीन हो गया है, मैं दिन प्रतिदिन सूखती जा रही हूँ। मुझे आने वाले वर्षा के दिनों की चिंता है। इस समय मेरे आस-पास न तो मेरा कोई बंधु है और न ही कोई सहारा देने वाला है। मेरे मुँह से अपना दुख व्यक्त करने के लिए आवाज भी नही निकल पा रही है। अत: मैं अपना दुख किसी को कैसे बताऊँ। अब मेरे पास यौवन रूपी पूँजी भी शेष नहीं रह गई है। ऐसी स्थिति में भला सीधे मुँ मुझसे बात कौन करेगा। मेरा शरीर मूँज की तरह छूँछा हो गया है। रात दिन रो-रोकर मैं दुबली हो गई हूँ और मेरा कोई आश्रय भी नहीं है। जब खंबा ही नहीं है तो सहारे की लकड़ी कैसे उठ सकती है। तात्पर्य यह है कि छप्पर के लिए पहली आवश्यकता खंभे की है... खंबे के होने पर ही उसे धुनकी के सहारे ऊपर उठाया जा सकता है। इसी प्रकार स्त्री के लिए सबसे प्रमुख आवश्यकता पति की है। जब वही नहीं है तो दूसरे आश्रय के विषय में सोचना व्यर्थ है। मेरे नेत्र आँसू बरसाते हैं, जो छप्पर विहीन मेरे समस्त घर में टपकते हैं। हे प्रियतम! तुम्हारे न होने से मैं इन आँसू रूपी वर्षा के जल में सराबोर हो गई हूँ। यदि तुम होते तो अपने आश्रय रूपी छाजन से मेरी रक्षा कर लेते और मुझे भीगने से बचा लेते। हे कंत! तुम्हारे बिना तो छाजन की शोभा तथा महत्व तभी है जब वह प्रियतम के हाथों उसी के लिए हो, बिना प्रियतम के उसका कोई महत्व नहीं।

अत: यह विचार कर कृपा की दृष्टि करो। हे निष्ठुर प्रिय! अब तो घर लौट आओ। तुम्हारे बिना तुम्हारा यह मंदिर उजाड़ हो रहा है, आकर इसे नए सिरे से बनाओ। तात्पर्य बिना तुम्हारा यह मंदिर उजाड़ हो रहा है, आकर इसे नए सिरे से बनाओ। तात्पर्य यह है कि जलकर नष्ट होती हुई, मुझको तुम आकर नया जीवन प्रदान करो।

विशेष :

१) जेठ में पढ़ने वाली भीषण गर्मी का उल्लेख किया गया है।
२) पति-पत्नी का एक दूसरे के प्रति महत्व को रेखांकित किया है।
३) श्लेष, पुनरुक्ति प्रकाश व अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

४.६ सारांश

इस अध्याय में विद्यार्थीयों ने प्रेममार्गी धारा के प्रमुख कवि मलिक मुहम्मद जायसी के जीवन के विषय में अध्ययन किया, रानी नागमती का विरह वर्णन का अवलोकन जिस सुंदरता के साथ कवि ने अपनी रचना में वर्णित किया है जो साहित्य में अन्यत्र वर्जित है। इस इकाई के अध्ययन से विद्यार्थी विरह वर्णन और जायसी के काव्य के रहस्यवादी पक्ष को जान सके।

४.७ लघुत्तरीय प्रश्न

१) अखरावट किस कवि की रचना है ?

२) पद्मावत में कहाँ के राजा का वर्णन है ?

३) पद्मावत काव्य की नायिका कौन है ?

४) नागमती कौन है ?

५) पद्मावती किसकी पुत्री है ?

६) कवि के अनुसार सिंहलद्वीप के निकट पहुँचते रत्नसेन को ही क्या प्रतीत होता है ?

७) जायसी के अनुसार विरह ने युद्ध की तैयारी कब की ?

८) नागमती ने हृदय के ताप की तुलना किससे की है ?

९) नागमती विरह वर्णन में विरह की कौनसी दशाओं का वर्णन कवि ने किया है ?

१०) जायसी के काव्य में रहस्यवाद के कौनसे भाव की अधिकता है ?

११) जायसी ने साधनात्मक रहस्यवाद के अंतर्गत कौनसा वर्णन प्रमुखता से किया है ?

१२) जायसी को किस काव्य परंपरा के कवि थे ?

उत्तर : जायसी सूफी काव्य परंपरा के कवि थे।

१३) जायसी ने पद्मावत में फारसी की किस शैली का अनुसरण किया है।

उत्तर : मसनवी शैली।

१४) चितौड़ का राजा कौन था ?

उत्तर : रत्नसेन

१५) पद्मावती किस द्वीप की राजकुमारी थी ?

उत्तर : सिंहल द्वीप

munotes.in

१६) रत्नसेन को छल से किसने बंदी बना लिया था ?

उत्तर : अलाउद्दीन ने।

४.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) जायसी ने नागमती विरह वर्णन का अत्यंत ही मार्मिक चित्रण किया है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।
२) जायसी के काव्य में रहस्यवादी प्रवृत्तियों का निरुपण हुआ है। स्पष्ट कीजिए।
३) जायसी का विरह वर्णन अलौकिक ही नहीं पारलौकिक भी हे स्पष्ट कीजिए।
४) पद्मावत में व्यक्त कल्पना और ऐतिहासिकता को व्यक्त कीजिए।

४.९ संदर्भ ग्रंथ

१) जायसी का पद्मावत : काव्य और दर्शन - गोविंद त्रिगुणायत
२) जायसी एवं उनका काव्य - डॉ. शिवसहाय पाठक
३) जायसी का काव्य शिल्प - डॉ. दर्शनलाल सेठी
४) जायसी का काव्य शिल्प - डॉ. विजयदेव नारायण साही

munotes.in

❖❖❖❖

५

पद्मावत

ईकाई की रूपरेखा :

५.१ इकाई की उद्देश्य
५.२ प्रस्तावना
५.३ पद्मावत एक महाकाव्य
५.४ जायसी की प्रेमसाधना
५.५ पद्मावत की भाषा शैली
५.६ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण
५.७ सारांश
५.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न
५.९ लघुत्तरीय प्रश्न
५.१० संदर्भ पुस्तके

५.० इकाई की उद्देश्य

उक्त इकाई के अध्ययन के माध्यम से विद्यार्थी पद्मावत एक महाकाव्य है इस विषय पर समीक्षात्मक अध्ययन कर सकेंगे। कवि जायसीजी के द्वारा पद्मावत में प्रयुक्त प्रतीक कौशल्य को जान सकेंगे इसी के साथ पद्मावत की भाषा शैली से अवगत हो सकेंगे।

५.१ प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा लिखित पद्मावत मसनवी शैली में लिखा गया है। इस ग्रंथ में महाकाव्य की सभी विशेषताएँ मौजूद है और महाकाव्य की विशेषताओं के संदर्भ में पद्मावत का अध्ययन करना पाठ्यक्रम व विद्यार्थीयों के जानकार होने की दृष्टि से आवश्यक है। वहीं कवि जायसीजी ने पद्मावत में प्रतीकों के माध्यम से प्रकृति का सुंदर रूप अभिव्यक्त किया है इतनी सुंदर प्रतीक योजना साहित्य में अन्यत्र देखने की नहीं मिलती। पद्मावत सामान्य व्यक्ति की बोल-चाल की भाषा में लिखा गया काव्य है इसीलिए यह सरल, सफल व सशक्त काव्य रूप के महत्व को दर्शाता है।

munotes.in

५.२ पद्मावत एक महाकाव्य

मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा लिखित पद्मावत मसनवी शैली में लिखा गया है। पद्मावत मानव जीवन की विविधता से युक्त महाकाव्य है। साहित्य दर्पणाकार के अनुसार - महाकाव्य का कथानक ऐतिहासिक या लोक प्रसिद्ध हो, जो नाटकीय संधियों से युक्त आठ से अधिक सर्गों में विभाजित हो और सर्गो में सानुबंधता हो। नायक देवता या उत्तम वंश में उत्पन्न क्षत्रीय राजा हो सकता है, जो धीरोदात हो। रस की दृष्टि से श्रृंगार, शांत तथा वीर रस में से कोई भी एक रस प्रधान हो। लक्ष्य की दृष्टि से कथानक धर्म, अर्थ, काम और मोक्षोन्मुख हो। इन प्रमुख विशेषताओं के अतिरिक्त साहित्य दर्पणाकार ने महाकाव्य की कुछ अन्य विशेषताएँ भी बतलाई हैं। जैसे -

१. प्रारंभ में आशीर्वाद, नमस्कार और कथावस्तु का निर्देश।
२. कहीं खलों की निंदा और कहीं सज्जनों की स्तुति।
३. एक सर्ग में एक ही छंद का प्रयोग हो, किंतु सर्गात छंद में भिन्नता हो, साथ ही एक सर्ग विभिन्न छंदो वाला हो।
४. सर्गात में आगे की कथा की सूचना हो।
५. नामकरण कवि के नाम, नायक के नाम या उद्देश्य के अनुसार हो।
६. संध्या, सूर्य, चंद्र, रात, अंधकार, दिन, प्रातः, दोपहर, शिकार, पर्वत, मौसम, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, युद्ध, व्याह, संतति, अभ्युदय आदि के वर्णन हों।

अब हम साहित्य दर्पणाकार के द्वारा निर्धारित महाकाव्य की विशेषताओं को ध्यान में रखकर पद्मावत का मूल्याँकन करते हैं जो इस प्रकार है -

१) कथानक :

पद्मावत की मुख्य कथा रत्नसेन - पद्मावती की कथा है। कथा को पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित किया जा सकता है। 'रत्नसेन संतति खंड' तक की कथा पूर्वार्द्ध के अंतर्गत आती है। और राघव चेतन देश निकाला खंड से सती खंड तक कथा का उत्तरार्द्ध है। इसका पूर्वार्द्ध जहाँ काल्पनिक है, वहाँ उत्तरार्द्ध ऐतिहासिक आधार पर स्थित है। इस प्रकार कथानक में कल्पना और इतिहास का सुंदर समन्वय हुआ है। पद्मावत की कथा मसनवी शैली में लिखी होने के कारण पद्मावत में सर्गबद्धता नहीं है, परंतु कथावस्तु घटनाओं और वस्तु, वर्णनों के आधार पर ५८ खंडों में विभाजित है। प्रत्येक खंड न तो बहुत छोटा है और न ही बहुत बड़ा। पद्मावत की कथा की श्रृंखला कहीं भी खंडित होती नहीं दिखाई देती है।

२) नायक :

जायसी द्वारा लिखित पद्मावत का नायक रत्नसेन श्रेष्ठ क्षत्रीय कुल से संबद्ध है। नायक में उत्साह, शौर्य, पराक्रम, दया, स्वाभिमान कूट-कूट कर भरा है। इस प्रकार समस्त गुणों के आधार पर वह विरोदात नायक है।

जम्बूदीप चितउर देसा। चित्रसेन बड़ तहाँ नरेसा।
रत्नसेन यह ताकर बेटा। कुल चौहान जाइ नहीं मेटा।।

३) नायिका :

पद्मावत की नायिका 'पद्मावती' अलौकिक सुंदरी होने के साथ-साथ प्रेम, शौर्य, तेज, पति परायणता, दया, क्षमा आदि गुणों से युक्त है। वह उच्च कुल की क्षत्रीय वंश की राजकुमारी है।

४) रस :

पद्मावत रस की दृष्टि से श्रृंगार प्रधान कृति है। श्रृंगार के साथ वीर, अद्भुत, शांत आदि रसों का समावेश भी इसमें हुआ है।

५) उद्देश्य :

पद्मावत का लेखन एक महान उद्देश्य को लेकर हुआ है। पद्मावती और नागमती के सती होने पर इनका भौतिक प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम में परिणत हो जाता है। मलिक मोहम्मद जायसी ने भारतीय कथा के माध्यम से सूफी सिद्धांतों का विवेचन कर प्रेम को सर्वोपरि सिद्ध किया है। पद्मावत का मुख्य उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति है।

६) काव्य और खंड काव्यों का नामकरण :

पद्मावत का नामकरण इसकी नायिका पद्मावती के नाम पर किया गया है तथा कथानक के खंडों का नामकरण घटना एवं वस्तु वर्णन के आधार पर हुआ है।

७) विस्तृत वर्णन :

महाकाव्य के अनुरूप ही पद्मावत में भी कथा का विस्तृत वर्णन हुआ है। कथानक, नगर, दुर्ग, समुद्र, युद्ध, संध्या, सूर्य, आदि के उदारता और व्यापक वर्णन देखने को मिलते हैं।

८) महाकाव्य की अन्य विशेषताएँ :

उपर्युक्त विशेषताओं के अतिरिक्त महाकाव्य की अन्य विशेषताओं का भी उल्लेख पद्मावत में मिलता है। इसके प्रारंभ में ईश्वर आदि की स्थिति के रूप में मंगलाचरण को रखा गया है -

'सुमिरौं आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू।'

पद्मावत में खल निंदा तथा सज्जन प्रशंसा का भी उल्लेख किया गया है। जिसे इस प्रकार देख सकते हैं -

'सुना साहि गढ़ छेंका आई। हिंदू तुरकन भई लराई।।'

पद्मावत के सभी खंडों में चौपाई और दोहा छंदों का प्रयोग किया गया है। खंड के अंत में अगले खंड की कोई सूचना नहीं दी गई है।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि पद्मावत एक महान उद्देश्य को केंद्र में रखकर लिखा गया महाकाव्य है। पद्मावत में महाकाव्य के समस्त बाह्य लक्षणों का उल्लेख मिलता है। जिन लक्षणों

munotes.in

को यहाँ नहीं देखा गया है वह उतने महत्वपूर्ण नहीं है। उक्त सभी मुद्दों को केंद्र में रखकर हम कह सकते हैं कि पद्मावत हिंदी का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है।

५.३ पद्मावत में प्रतीक योजना

मलिक मोहम्मद जायसी ने प्रकृति के प्रतीकात्मक रूपों को पद्मावत के माध्यम से इस प्रकार अभिव्यक्त किया है कि पाठक उनके कथन के आशय को तथा कथा प्रसंग को स्पष्ट रूप से समझ सकें। जायसी द्वारा प्रस्तुत किए गए प्रतीकों की कल्पना बहुत ही मार्मिक है। उन्होंने सिंहलगढ़ को परमधाम का प्रतीक माना है। साथ ही कमल, सूर्य, चंद्र, जल, मानसरोवर आदि को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। जैसे -

कँवल जो विगसा मानसर, बिनु जल गया सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहैं, कंत जो सींचैं आइ।।

पद्मावत में प्रकृति के चित्रण में सबसे अधिक प्रतीकों और संकेतों का प्रयोग मिलता है। रहस्यवाद में प्रतीकों का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है। सूफी रहस्यवादियों ने प्रकृति की कुछ वस्तुओं का प्रतीक रूप में काफी प्रयोग किया है। सूफी काव्य में साकी, शराब, प्याला, माशूक, दर्पण नख-शिख आदि को आध्यात्मिक तत्वों का प्रतीक माना है, उसी तरह प्राकृतिक वस्तुओं में आसमान, बिजली, बादल आदि भी प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। जायसी ने सूफी काव्य के कुछ ही रूढ़ प्रतीकों का प्रयोग किया है। उनके यहाँ भी कहीं-कहीं शराब का प्रतीकात्मक वर्णन देखने को मिलता है। हीरामन तोता विरही आत्मा का प्रतीक न होकर ज्ञानी गुरु का प्रतीक है। जायसी ने रूढ़ प्रतीकों का प्रयोग न कर प्राकृतिक वस्तुओं और दृश्यों को प्रतीक के रूप में स्वीकार किया है। उदाहरणार्थ सिंहल की अमराई के माध्यम से उन्होंने आध्यात्मिक संकेत किए है -

घन अमराउँ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा।।
तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भई जग छाँह रैन होइ छाई।।

इस प्रकार यहाँ अमराई का वर्णन तो हुआ हैं किंतु साथ ही साधना की उस अवस्था का संकेत किया है जिसमें पहुँचकर साधक परम शांति का अनुभव करने लगता है तत्पश्चात उसमें सांसारिक सुखो के प्रति कोई मोह नहीं रह जाता है। यही ब्रह्म के सीमाप्य की अवस्था है। यहाँ पहुँचकर साधक अपने प्रिय का नाम रटते-रटते लौकिक जगत से आध्यात्मिक जगत की ओर उठने लगता है। हिंदी साहित्य में समुद्र का वर्णन जैसा जायसी के यहाँ देखा गया है यदि कामायनी को छोड़ दिया जाए तो वैसा वर्णन अन्य कहीं भी देखने को नहीं मिलता है। यहाँ इस बात का भी ध्यान रहे कि जायसी के यहाँ समुद्र का वर्णन आलंबन या उद्दीपन रूप में नही बल्कि प्रतीक रूप में हुआ है। इसीलिए समुद्र के प्राकृतिक स्वरूप का संश्लिष्ट वर्णन इनके यहाँ देखने को नहीं मिलता। जायसी ने सिंहल द्वीप को ब्रह्म लोक का प्रतीक माना है औ उस लोग तक पहुँचने के लिए मार्ग में आने वाली अनेक बाधाओं का उल्लेख किया है -

तेहि रे पंथ हम चाहहि गवना। होउ संजूत बहुरि नहिं अवना।।

जायसी के अनुसार खार समुद्र को सत्य के सहारे, क्षीर समुद्र निर्लोभ होकर, दधि समुद्र को प्रेम के बल पर, उदधि समुद्र को विरह साधना के सहारे, सुरा समुद्र को प्रेम में आत्मोत्सर्ग करने की शक्ति से और किलकिला समुद्र को गुरु की सहायता से पार किया जा सकता है। जो इन सागरों को पार कर मानसागर नामक सातवे सागर में पहुँच जाएगा, यही स्थिति ब्रह्म के सामीप्य की सिद्धावस्था का प्रतीक होगी।

मलिक मोहम्मद जायसी ने नख-शिख का प्रतीकात्मक वर्णन बड़ी ही सटीकता के साथ किया है। नख-शिख वर्णन की परिपाटी भारतीय साहित्य में काफी लंबे समय से अपनाई जाती रही है। संस्कृत, के अतिरिक्त प्राकृत और अपभ्रंश के काव्यों में भी रुढ़िबद्ध सौंदर्य वर्णन मिलता है। इसमें शरीर के अंग प्रत्यंग का क्रमिक वर्णन परंपरा मुक्त सादृश्य मूलक अप्रस्तुतों के माध्यम से किया जाता है। फारसी के सूफी काव्य में नखशिख वर्णन की परंपरा काफी प्रचलित थी। इसके तहत मुख ब्रह्म के रूप का, मुस्कार उसके ज्योति का, कटाक्ष उसकी आकर्षण काम शक्ति का प्रतीक है। जायसी ने अनेक स्थानों पर नख-शिख वर्णन के रूप में भी सौंदर्य चित्रण किया है। किंतु उन्होंने भारतीय एवं फारसी दोनों ही काव्यरूढ़ियों का सहारा लिया है। मुख और मुस्कान के वर्णन के जो उदाहरण ऊपर दिए गए है, प्रतीकात्मक ही हैं, जिनमें पद्मावती की हँसी और उसकी उज्जवलता दंत-पंक्ति को ईश्वरीय तेज और प्रकाश के प्रतीक के रूप में और उसके केसों का वर्णन अज्ञान के अंधकार और माया के पर्दे के प्रतीक के रुप में हुआ है। यही बरुनियों का वर्णन ब्रह्मा की मोहनी शक्ति और आकर्षण के प्रतीक के रूप में भी देखा गया है -

बरुनी का करनौं इमि बनी। साधे बान जानु दुव अनी।।

आगे हम देखते हैं कि जायसी ने कुछ पात्रों घटनाओं और वस्तुओं के प्रतीकात्मक अर्थ की ओर संकेत किया है। यदि हम इनका ठीक ढंग से अवलोकन करें तो उनका व्यंग्यार्थ समझ में आ जाता है। इस दृष्टि से देखने पर पद्मावत के प्रतीक और उनके व्यंग्य अर्थ इस प्रकार है -

पद्मावती-स्वयं परमात्मा है, रत्नसेन - प्रबुद्ध जीवात्मा, हीरामन - गुरु, नागमती - सांसारिक संबंध, अलाउद्दीन - माया, राघव सेन - शैतान, सिंघल - निर्मल हृदय, देव पाल और दो दूतियाँ - मन की पाप वृत्तियाँ, सात समुद्र - सूफियों के साथ जंगल (आध्यात्मिक साधना की सात सीढ़ियाँ), मानसर समुद्र - ब्रह्मरंध्र, सिंहल द्वीप - आध्यात्मिक प्रेम मार्ग की साधना।

अंततः कहा जा सकता है कि जायसी ने प्रतीक पद्धति का सहारा लेने के बावजुद लौकिक कथा को बिल्कुल भी गौंड़ नहीं बनने दिया। उनका उद्देश्य लौकिक के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम को अभिव्यक्त करना था किंतु इसके लिए उन्होंने बहुत ही कलात्मक ढंग से अलौकिक कथा को इसका आधार बनाया।

५.४ जायसी की प्रेम साधना

भारत में विवाहोपरांत प्रेम के आदर्श रूप का विकास देखने को मिलता है। रामायण में इसी तरह के प्रेम का उल्लेख हुआ है। यह प्रेम उभय पक्षीय होने पर भी नायक के पक्ष में उसके कर्तव्य द्वारा मर्यादित होता है। दूसरे प्रकार का प्रेम विवाह के पूर्व का होता है तत्पश्चात विवाह

होता है। अभिज्ञान शाकुंतलम् और विक्रमोर्वशी में इस तरह का प्रेम देखने को मिलता है। तीसरे प्रकार का प्रेम राजाओं के अंत:पुर, उद्यान आदि के भीतर मिलता है। यह प्रेम भोग विलास, वृत्तियों की ईर्ष्या और विदूषक आदि के हास परिहास से परिपूर्ण रहता है। रत्नावली, प्रियदर्शिका व कर्पूर मंजरी आदि में इसी प्रकार का प्रेम दिखाई देता है। चौथे प्रकार का प्रेम बैठे-बिठाए उत्पन्न हो जाता है। इसमें नायक, नायिका के गुण श्रवण, स्वप्न दर्शन या चित्र दर्शन के द्वारा एक दूसरे पर मुग्ध होते हैं। उषा अनिरुद्ध का प्रेम इसी प्रकार का है। इस प्रकार का प्रेम नायक नायिका दोनों के प्रयत्नों से होता है। फारसी और सूफी प्रेम-पद्धति में इसी प्रकार के प्रेम को देखा गया है।

पद्मावत में प्रेम - पद्धति का रूप :

मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत फारसी प्रेम परंपरा का प्रेमाख्यानक काव्य है। इसके अंतर्गत नायक रत्नसेन की ओर से नायिका से मिलने का प्रयत्न किया जाता है। जब हीरामन नामक सुख के मुख से नायक पद्मावती के नख-शिख का मनोहारी वर्णन सुनता है तो रत्नसेन उसके प्रेम में निमग्न होकर उसकी प्राप्ति के लिए योगी बनकर घर से निकल पड़ता है। अनेक बाधाओं का सामना करते हुए वह सात समुद्र पार कर सिंहल द्वीप पहुँच जाता हैं। वहाँ पहुँचकर जब वह पद्मावती के नाम का जप करने लगता है तब पद्मावती भी उसके तत्व के प्रभाव से विरहाग्नि में जलने लगती है। इस बात की सूचना राजा को मिलने पर रत्न सेन को सूली पर चढ़ाने की तैयारी की जाती है। यह सुन पद्मावती भी उसके साथ मरने के लिए तैयार हो जाती है। प्रेम का यह आदर्श भारतीय न होकर फारसी पद्धति के लैला-मजनु, शीरी-फरहाद से मिलता है। यह प्रेम का एकांतिक रूप है जिसमें प्रेमी लोक और समाज के प्रभाव से प्रेरित होकर लोक व्यवहार और सामाजिकता का जो निरुपण किया है, उससे पद्मावत की प्रेम गाथा सर्वथा एकांकिक प्रेम का उदाहरण बनने से बच गई है। उदाहरणार्थ रत्नसेन के जोगी बन कर निकलने पर नागमती और रत्नसेन की माता सरस्वती उसे रो-रोकर रोकती हैं। उधर पद्मावती के विदा होने पर परिजनों और सखियों के विछुड़ने से स्वाभाविक दुख का निरुपण हुआ है।

हीरामन शुक के मुख से पद्मावती का नख-शिख सौंदर्य वर्णन सुनकर रत्नसेन मूर्छित हो जाता है जो प्रेम के ऊँचे आदर्श का प्रमाण नहीं है। आगे रत्नसेन शिव मंदिर में पद्मावती की एक झाँकी पाते ही एक बार फिर से मूर्छित हो जाता है। रत्नसेन की मूर्च्छा दूर होते ही अप्सरा का रूप धारण कर पार्वती जब वहाँ पहुँचती है तो वह उनकी ओर ध्यान न देकर कह उठता है -

भलेहि रंग अछरी तोर राणा। मोहिं दूसरे सों भाव न बाता।।

उधर रत्न सेन के सिंहल पहुँचते ही पद्मावती विरह-व्याकुल हो उठती है। अत: लौकिक प्रेम की दृष्टि से पुरुष की यह विह्वलता काम जनित ही कही जाएगी न कि प्रेम विरह जनित। पद्मावती का यह वियोग संयोग के पश्चात ही हो सकता है। परंतु जायसी इस अस्वाभाविकता को दूर करने के लिए योग का अलक्ष्य प्रभाव बतलाते हैं। अर्थात रत्नसेन के प्रेम योग के प्रभाव से पद्मावती भी उसके प्रेम वियोग में विह्वल हो उठी -

पद्मावती तेहि जोड़ संजोगा। परी प्रेम बस गहे वियोगा।।

मलिक मोहम्मद जायसी यहाँ अलौकिक प्रेम के अंतर्गत अस्वाभाविकता को दूर करने में सक्षम नहीं हो पाते। पद्मावती के पूर्वराग की अवस्था उस समय से प्रारंभ होती है, जब हीरामन शुक आकर पद्मावती से रत्नसेन के रूप गुण और उसके अनन्य प्रेम की चर्चा करता है। यह सुन पद्मावती शिव मंडल में उसे देखने के लिए आती है। रत्नसेन को जब सूली पर चढ़ाने की बात आती है तब उसके उदगार स्वाभाविक प्रेम की व्यंजना करते हैं। विवाह के पश्चात पद्मावती प्रेम के उदात और आदर्श रूप का पालन करती है। रत्नसेन के बंदी हो जाने पर पद्मावती बिरह व्याकुल हो उठती है और गोरा बादल की सहायता से रत्नसेन की मुक्ति के लिए योजना बनाती है। रत्नसेन की मृत्यु पर पद्मावती और नागमती रोना धोना नहीं करती बल्कि परलोक में मिलने की आशा में सती हो जाती हैं। यहाँ प्रेम का उँचा आदर्श देखने को मिलता है।

जायसी ने रत्न सेन और पद्मावती के प्रेम के अतिरिक्त अलाउद्दीन और पद्मावती के प्रेम के स्वरूप को भी रेखांकित किया है। परंतु यहाँ अलाउद्दीन का प्रेम वासनात्मक है। नागमती का प्रेम पति परायण है। वह हिंदू पत्नी के पवित्र प्रेम का आदर्श है। यहाँ पद्मावती और नागमती के झगड़ने पर रत्नसेन का दोनों को समझाकर शांत करना पुरुष के बहुविवाह के औचित्य को अभिव्यक्त करता है। जायसी ने रत्नसेन के माध्यम से लौकिक और अलौकिक प्रेम को एक साथ व्यंजित करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि जिस प्रकार साधक गुरु ईश्वर का आभास पाकर उसे पाने के लिए प्रेम-मग्न हो जाता है, उसी प्रकार रत्न सेन भी हीरामन शुक से पद्मावती के अलौकिक सौंदर्य का वर्णन सुनकर सुध-बुध खो बैठता है। उसका घर से उसे पाने के लिए निकलना, साधक का ईश्वर की खोज के लिए निकलना है। वास्तव में पद्मावत फारसी प्रेम पद्धति का काव्य है। सूफी प्रेम साधना ईश्वर की अभिव्यक्ति प्रियतम के रूप में की गई है। यहाँ रत्नसेन साधक (जीव) है और पद्मावती साध्य (ब्रह्म) है, हीरामन शुक मार्गदर्शक (गुरु) है। इस प्रकार गुरु के मुख से ब्रह्म का आभास पाकर जीव का घर से निकल पड़ना जीव का ब्रह्म के साथ एकाकार होने का संकेत है। अत: पद्मावत में व्यक्ति प्रेम सूफी साधना की प्रेम-पद्धति की कसौटी पर खरा उतरता है।

सूफी प्रेम पद्धति और पद्मावत :

जायसी ने पद्मावत में फारसी प्रेम पद्धति के प्रेमाख्यानों की तरह सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, समासोक्ति के द्वारा कथानक का गठन और विकास किया है। पद्मावत में सूफी प्रेमाख्यानों की तरह प्रेम की पीर, विरह वेदना, अनुपम सौंदर्य की प्रधानता का उल्लेख मिलता है।

लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना :

जायसी ने सूफी प्रेम पद्धति में लौकिक प्रेम (इश्क मिजाजी) के द्वारा अलौकिक प्रेम (इश्क हकीकी) की व्यंजना की है। प्रेम के संबंध में कहा जाता है कि इसकी उत्पति स्वप्न दर्शन, चित्र दर्शन या सौंदर्य की प्रशंसा सुनकर होती है। सूफी प्रेम साधना के अनुसार ईश्वर एक है, जिसे हक कहते है। आत्मा उसका बंदा है। यह बंदा प्रेम के सूत्र में बंद कर हक तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। हक तक पहुँचने के लिए बंदे को शरीयत, तरीकत, हकीकत और मारीफत नामक चार मंजिलें पार करनी होती है। इस प्रकार मरीफत पर पहुँचकर आत्मा का (जीवन) प्राप्त करने के लिए फना हो जाती है। फना होते ही वह शुद्ध और पवित्र होकर अनलहक हो जाती है। पद्मावत का नायक रत्नसेन हीरामन शुक से पद्मावती का लौकिक सौंदर्य की अभिव्यक्ति सुनकर योगी का भेष धारण कर सिंहल द्वीप के लिए निकल पड़ता है। मार्ग अने

वाली कठिनाइयों को पार करता हुआ जब वह सिंहल द्वीप पहुँचता है तो वहाँ उसे शूली पर चढ़ाने तक की नौबत आ जाती है परंतु उसकी अनन्य प्रेम निष्ठा के परिणाम स्वरूप पद्मावती उसे प्राप्त हो जाती है। सिंहल से लौटने पर समुद्र का तूफान प्रेमी युगल को अलग कर देता है। यहाँ भी प्रेम की अनन्यता के कारण ही उनका पुनः मिलन होता है। इस प्रकार रत्नसेन सकुशल चितौड़गढ़ लौट आता है। राघव चेतन की दुष्टता के चलने पुनः उनके प्रेम मे बाधाएँ उत्पन्न होती हैं। अलाउद्दीन छल से रत्नसेन को बंदी बनाकर दिल्ली ले जाता है। तत्पश्चात पद्मावती गोरा बादल के सहयोग से रत्नसेन को अलाउद्दीन के बंधन से मुक्त करने में सफल होती है। देव पाल की उद्दंडता का दंड देने के लिए रत्नसेन उससे युद्ध करता है। इस युद्ध में रत्नसेन मारा जाता है, रत्नसेन के मारे जाने की खबर सुनकर पद्मावती और नागमती सती हो जाती है। इस प्रकार कहा जाता है कि रत्नसेन रूपी बंदे की आत्मा फना हो कर अनलहक की अधिकारिणी बनती है और आलमेलाहूत (माधुर्य लोक) में जाकर पद्मावती रूप हक में एकाकार हो जाती है।

अंततः कहा जा सकता है कि जायसी ने लौकिक प्रेम द्वारा ईश्वर उन्मुख प्रेम की अर्थात अलौकिक प्रेम की व्यंजना की है। पद्मावत के अंत में उन्होंने अलौकिक प्रेम कथा को अन्योक्ति कह दिया है किंतु समस्त कथा से दोहरे अर्थो (ईश्वरोन्मुख प्रेम) की अभिव्यक्ति नहीं होती। इस संपूर्ण कथा में कहीं - कहीं पर ही आध्यात्मिक प्रेम के संकेत मिलते हैं। पद्मावत को अन्योक्ति के स्थान पर समासोक्ति कहना ही अधिक उपयुक्त होगा।

५.५ पद्मावत की भाषा शैली

प्रेम की पीर के अनन्य आराधक कवि जायसी प्रेम मार्गी शाखा के प्रवर्तक के रूप में स्मरण किए जाते हैं। प्रेमाख्यानक काव्यों की परंपरा में उनके ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। जायसी ने पद्मावत महाकाव्य की रचना की, जिसमें लौकिक कथा के माध्यम से अलौकिक का प्रभावपूर्ण वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य ग्रंथ जैसे अखरावट, आखिरी कलाम आदि लिखे हैं।

जायसी के सभी ग्रंथो की भाषा अवधी है। उन्होंने आम आदमी की बोलचाल की भाषा को स्वीकार किया है, जिसमें अरबी फारसी के शब्दों का भी अत्यधिक मात्रा में प्रयोग मिलता है। संस्कृत के तत्सम शब्दों का भी प्रभाव है। भाषा को प्रभावशाली बनाने के लिए प्रचलित लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया गया है। समग्र रूप में जायसी की भाषा सरल, सरस, सहज, मधुर, सजीव और प्रभावशाली है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी कहते हैं - 'जायसी की भाषा देशी साँचे में ढली हुई, हिंदुओं के घरेलू भाव से भरी हुई, बहुत ही मधुर और ह्रदयग्राह्य हैं।'

काव्य रूप की दृष्टि से जायसी ने प्रबंध शैली को अपनाई है। उस समय फारसी में मसनवी शैली और हिंदी में चरित काव्यों की एक विशेष शैली प्रचलित थी। जायसी ने दोनों शैलियों को मिलाकर एक नवीन शैली को जन्म दिया। जायसी के पद्मावत में शैली का यही रूप मिलता है। पद्मावत के आरंभ में मसनवी शैली और भाषा, छंद आदि में रचित काव्य की शैली मिलती है। उन्होंने चौपाई, दोहा छंद में भाषा शैली का सुंदर निर्वाह किया है। समग्र रूप में जायसी की भाषा शैली सरल, सफल, सहज सशक्त एवं महत्वपूर्ण है।

munotes.in

५.६ संदर्भ सहित स्पष्टीकरण

सिंहलद्वीप - वर्णन खंड

संदर्भ सहित व्याख्या

जबहिं दीप नियरावा जाई, जनु कबिलास निअर भा आई।।
घन अमराउँ लाग चहुँ पासा। उठा भूमि हुत लागि अकासा।।
तरिवर सबै मलयगिरि लाई। भई जग छाँह रैन होई छाई।।
मलय समीर सोहावन छाहाँ। जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ।।
ओही छाँह रैन होइ आवै। हरियर सबै अकास दिखावै।।
पथिक जो पहुँचे सहि कै घामू। दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू।।
जेइ वह पाई छाँह अनूपा। फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा।।
अस अमराउ सघन घन, बरनि न पारौ अंत।
फूलै फैरै छवौ ऋतु, जानहु सदा बसंत।।

संदर्भ : प्रस्तुत पंक्तियाँ हमारी पाठ्यपुस्तक मलिक मोहम्मद जायसी द्वारा रचित पद्मावत के सिंहलद्वीप खंड से ली गई है।

प्रसंग : सिंहल द्वीप का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याखा : इस पद्यांश में सिंहल द्वीप के प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन करते हुए जायसी कहते हैं कि जब भी कोई व्यक्ति सिंहल द्वीप के निकट जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी स्वर्ग के निकट आ गया हो। इस द्वीप के चारों ओर घनी अमराइयों लगी हैं जिन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो वे आकाश का स्पर्श कर लेना चाहते हों। इन वृक्षों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि ये सभी वृक्ष मलय पर्वत से लाए गए हों। ये वृक्ष इतने घने हैं कि इनकी छाँह में दिन भी रात की तरह लगने लगता है। इनसे बहने वाली हवा मलय पर्वत की ओर से आने वाली हवा का ऐहसास कराती है। यहाँ ज्येष्ठ के महीने में भी जाड़े का अनुभव होता है। वर्षा ऋतु में इन वृक्षों की जड़ों की तरफ देखने पर अंधकार दिखाई देता है और आकाश की तरफ देखने पर हरियाली दिखाई देती है। दूर-दूर से आने वाले थके हारे पथिक जब इनकी घनी छाँव में विश्राम करते हैं तो वे कुछ ही क्षणों में अपने समस्त दुख भूलकर सुख का अनुभव करने लगते हैं। जो व्यक्ति इस छाँह का सानिध्य ले लेता है वन पुनः धूप की शरण में नहीं जान चाहता है।

जायसी कहते हैं कि ऐसी सुंदर सघन अमराइयाँ केवल सिंहल द्वीप में ही हैं और वे पूरी तरह से उसका वर्णन करने में असमर्थ है। वहाँ छहँ ऋतुएँ फलती फूलती रहती हैं अर्थात वहाँ सदैव वसंत ऋतु का साम्राज्य रहता है।

विशेष :

१) उत्प्रेक्षा व अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।
२) जायसी ने पृथ्वी पर ही स्वर्ग की रचना की है।
३) घाम (सांसारिक कष्ट) और छाँह (शीतल सुख) जैसे प्रतीकों के माध्यम से आध्यात्मिक दृष्टि को अभिव्यक्त किया है।

mumotes.in

५.७ सारांश

उक्त इकाई के अध्ययन विद्यार्थी जान पाये कि किस प्रकार ५८ खण्डों में विभाजित पद्मावत रचना महाकाव्य की विशेषताओं के आधार पर खरी उतरती है। विद्यार्थी फारसी प्रेम परम्परा में लिखित इस काव्य को जान सके। इस काव्य में व्याप्त लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना को समझ सके और अंत में पद्मावत में प्रयुक्त भाषा के विषय में अध्ययन कर सकेंगे।

५.८ दीर्घोत्तरी प्रश्न

१) पद्मावत मानव मन की विविधताओं से युक्त महाकाव्य है स्पष्ट कीजिए।
२) जायसी ने पद्मावत में प्रतीकों का सुन्दर संयोजन किया है स्पष्ट कीजिए।
३) जायसी प्रेम की साधना में विश्वास रखते थे। इस तथ्य की समीक्षा कीजिए।
४) जायसी की भाषा शैली पर प्रकाश डालिए।
५) जायसी प्रेम के पीर के कवि है स्पष्ट कीजिए।
६) पद्मावत के काव्य सौंदर्य को स्पष्ट कीजिए।

५.९ लघुत्तरीय प्रश्न

१) पद्मावत महाकाव्य कितने खंडो में विभाजित है ?
२) पद्मावत में कौनसे छंद का प्रयोग किया गया है ?
३) जायसी ने सिंहल द्वीप को किसका प्रतीक माना है ?
४) जायसी ने पद्मावत में कौनसी दो काव्य रूढ़ियों का सहारा लिया है ?
५) पद्मावत में प्रेम पद्धति का कौनसा रूप है ?
६) रत्न सेन को पद्मावती के लौकिक सौंदर्य के विषय में कौन बता है ?
७) पद्मावती किसकी सहायता से रत्नसेन को छुड़वाती है ?
उत्तर : गोरा बादल की।

८) रत्नसेन को पद्मावती के सौंदर्य के संदर्भ में कौन बताता है ?
उत्तर : हीरामन शुक

९) पद्मावत का मुख्य उद्देश्य क्या था ?
उत्तर : मोक्ष की प्राप्ति।

१०) पद्मावत में प्रधान रूप से किस रस की बात की गई हैं ?
उत्तर : श्रृंगार रस की।

११) पद्मावती किस कुल की राजकुमारी है ?
उत्तर : उच्च क्षत्रीय कुल की।

❖❖❖❖

mnotes.in

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी सूफ़ी काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ एवं प्रतिनिधि कवि हैं। महत्त्व एवं प्रतिष्ठा की दृष्टि से तुलसी, सूर एवं जायसी समकक्ष ठहरते हैं।

भक्तिकाल के अन्य कवियों की भाँति ही जायसी का जीवनवृत्त भी अप्राप्य है। अनुमान के आधार पर इनका जन्म 15वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में हुआ होगा। डॉ. बच्चन सिंह ने अपने ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास' में जायसी का जन्म सन् 1464 ई. माना है। उनके जन्म-स्थान एवं जन्म-तिथि के विषय में मतभेद है। जन्म-स्थान उनकी रचना से ही लगता है—

"जायस नगर धरम अस्थानू। तहाँ आइ कवि कीन्ह बखानू।"

किन्तु आचार्य शुक्ल इन्हें (जायसी को) जायस नगर के निवासी मानते हैं। जायसी ने अपना गुरु सय्यद अशरफ़ को माना है। इन्होंने अपने पीर के सम्बन्ध में स्वयं लिखा है—

"सय्यद अशरफ़ पीर हमारा,
जिन्ह मोहि पंथ दीन्ह उजियारा॥"

जायसी पहले शेरशाह के आश्रय में रहे फिर महाराज जगतदेव के आश्रय में रहे परन्तु अमेठी के राजा रामसिंह के यहाँ इनका बहुत सम्मान था। अत्यधिक काव्य-रचना यहीं पर हुई। जायसी की मृत्यु अमेठी में हुई, उनकी कब्र अब भी अमेठी में है। कुछ विद्वान इनकी मृत्यु सन् 1542 ई. में हुई मानते हैं। शुक्ल जी ने जायसी के विषय में लिखा है—

"जायसी बड़े भावुक भगवद्भक्त थे और अपने समय में बड़े ही सिद्ध और पहुँचे हुए फ़कीर माने जाते थे पर कबीर के समान अपना एक निराला पंथ निकालने का हौसला उन्होंने कभी न किया। जिस मिल्लत या समाज में उनका जन्म हुआ, उसके प्रति विशेष कर्तव्यों के पालन के साथ-साथ वह सामान्य मनुष्य धर्म के सच्चे अनुयायी थे।"

जायसी के नाम के साथ ग्रन्थों का सृजन जुड़ा हुआ है किन्तु नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा प्रकाशित 'जायसी ग्रन्थावली' में केवल तीन ही रचनाओं का संकलन हुआ है—पद्मावत, अखरावट, आखिरी कलाम। चित्ररेखा, मसलानामा इत्यादि ग्रन्थों का प्रकाशन भी हो गया है पर जायसी की कीर्ति का आधार 'पद्मावत' ही है।

जायसी काव्य में सूफ़ी रहस्यवाद पाया जाता है किन्तु इस पर अद्वैतवाद का भी प्रभाव लक्षित किया जा सकता है। जायसी ने अपने काव्य में प्रेमिका को परमात्मा का प्रतीक तथा प्रेमी को आत्मा का प्रतीक माना है। 'पद्मावत' में पद्मावती का प्रेमखंड रहस्यवाद का सुन्दर निःदर्शन है। पद्मावत पूर्णरूपेण रहस्यवादी काव्य है। उदाहरणार्थ—

"तन चितउर मन राऊर कीन्हा।
हिय सिंघल बुधि पदमिनि चीन्हा॥"

जायसी ने प्रेमाख्यान के माध्यम से लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम का रंग दिया है। लौकिक प्रेम में रत्नसेन मन का तथा पद्मावती बुद्धि का प्रतीक है तो अलौकिक प्रेम में वे आत्मा तथा परमात्मा का प्रतीक बन गए हैं।

जायसी ने अपने काव्य में शृंगार का सूक्ष्म एवं हृदयस्पर्शी चित्रण किया है। संयोग का एक चित्र—

"साजन लेइ पठावा आयस जाइ न मेट
तन मन जोबन साजि के देह चली लेइ भेट।"

प्रेम मार्ग में संयोग-वियोग दोनों के लिए स्थान है। नागमति का वियोग वर्णन हिन्दी साहित्य में एक महत्त्वपूर्ण संयोग है। इसके लिए उसने दो प्रयुक्तियाँ अपनाई हैं—नागमति और पक्षियों का संवाद तथा बारहमासा।

फिरि फिरि रोइ कोई नहिं डोला
आधी रात बिहंगम बोला

× × ×

बरसै मघा झकोरि झकोरी
मोर दोउ नैन चुवइ जनु ओरी।

जायसी प्रेम की पीर के कवि हैं। उनके चित्रण में जो गहनता है वह वस्तुतः मन की गहराई तक उतर जाती है।

जायसी ने 'पद्मावत' में लोकपक्ष का समावेश भी कर दिया है। जायसी का चरित्र-चित्रण एकदेशीय है। रत्नसेन एक आदर्श प्रेमी है, पद्मावती आदर्श प्रेयसी है। नागमती आदर्श पत्नी एवं गोरा-बादल आदर्श वीर है।

सूफी कवियों की यह अन्यतम विशेषता है कि उन्होंने प्रेम का प्रमुख साधन नारी को माना है।

नारी को उच्च स्थान देते हुए जायसी ने उसे परमात्मा का प्रतीक माना है। नारी एक नूर है जिसके बिना विश्व सूना है। जायसी ने नारी सौन्दर्य का भी चित्रण किया है।

जायसी के काव्य में लोकजीवन का चित्रण पर्याप्त रूप में है। उनके काव्य में लोक चित्रण है जैसे सर्वसाधारण का अन्धविश्वास, जादू-टोना, लोक-व्यवहार, तीर्थ-व्रत, सांस्कृतिक वातावरण आदि बड़ी सफलता से अंकित किए गए हैं। हिन्दू संस्कृति का परिचय भी जायसी काव्य में मिलता है।

सूफी प्रेम काव्यों में शैतान की सत्ता स्वीकार की गई है जो साधना मार्ग में व्यवधान उत्पन्न करता है। जायसी के पद्मावत में राघव चेतन शैतान के रूप में वर्णित है।

जायसी की भाषा अवधी है। इसमें भी ठेठ अवधी है जिसमें मिठास है। तुलसी की अवधी संस्कृतनिष्ठ है। जायसी ने दोहा-चौपाई छन्दों का अवधी भाषा में सफल प्रयोग किया है। जायसी के काव्य में शृंगार रस प्रधान है किन्तु साथ ही शान्त, करुण, बीभत्स जैसे रसों की भी अभिव्यक्ति हुई है। अलंकारों में अधिकतर उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक आदि का प्रयोग किया गया है किन्तु साथ ही अतिशयोक्ति, अन्योक्ति अलंकार भी प्रयुक्त हुए हैं।

जायसी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों ही शैलियों का प्रयोग किया है। 'पद्मावत' महाकाव्य तो हिन्दी साहित्य का एक दुर्लभ रत्न है।

जायसी सूफी काव्यधारा में ही नहीं अपितु हिन्दी साहित्य में गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानों में जायसी के 'पद्मावत' का स्थान निश्चित रूप से सर्वोपरि है। बाबू गुलाबराय के अनुसार—"जायसी महान् कवि हैं। उनमें कवि के समस्त सहज गुण विद्यमान हैं। वह अमर कवि हैं।"

पद्मावत

सिंहलद्वीप वर्णन खंड

सिंघलद्वीप कथा अब गावौं । औ सो पदमिनि बरनि सुनावौं ॥
निरमल दरपन भाँति बिसेखा । जो जेहि रूप सो तैसइ देखा ॥
धनि सो दीप जहँ दीपक बारी । औ पदमिनि जो दई सँवारी ॥
सात दीप बरनै सब लोगू । एकौ दीप न ओहि सरि जोगू ॥
दियादीप नहिं तस उँजियारा । सरनदीप सर होइ न पारा ॥
जंबूदीप कहौं तस नाहीं । लंकदीप सरि पूज न छाहीं ॥
दीप गभस्थल आरन परा । दीप महुस्थल मानुस हरा ॥
सब संसार परथमैं आए सातौं दीप ।
एक दीप नहिं उत्तिम सिंघलदीप समीप ॥ 1 ॥

गधबसेन सुगंध नरेसू । सो राजा, वह ताकर देसू ॥
लंका सुना जो रावन राजू । तेहु चाहि बड़ ताकर साजू ॥
छप्पन कोटि कटक दल साजा । सबै छत्रपनि औ गढ़ राजा ॥
सोरह सहस घोड़ घोड़सारा । स्यामकरन अरु बाँक तुखारा ॥
सात सहस हस्ती सिंघली । जनु कबिलास एरावत बली ॥
अस्वपतिक सिरमौर कहावै । गजपतीक आंकुस गज नावै ॥
नरपतीक कहँ और नरिंदू । भूपतीक जग दूसर इंदू ॥
ऐस चक्कवै राजा चहूँ खंड भय होइ ।
सबै आइ सिर नावहिं सरवरि करै न कोइ ॥ 2 ॥

जबहिं दीप नियरावा जाई । जनु कबिलास नियर भा आई ॥
धन अमराउ लाग चहुँ पासा । उठा भूमि हुत लागि अकासा ॥
तरिवर सबै मलयागिरि लाई । भइ जग छाँह रैनि होइ आई ॥
मलय समीर सोहावन छाहाँ । जेठ जाड़ लागै तेहि माहाँ ॥
ओही छाँह रैनि होइ आवै । हरियर सबै अकास देखावै ॥
पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू । दुख बिसरै, सुख होइ बिसरामू ॥
जेइ वह पाई छाँह अनूपा । फिरि नहिं आइ सहै यह धूपा ॥

अस अमराउ सघन घन बरनि न पारौं अंत ।
फूलै फरै छवौ ऋतु, जानहु सदा बसंत ॥ 3 ॥

फरे आँब अति सघन सोहाए । औ जस फरे अधिक सिर नाए ॥
कटहर डार पींड सन पाके । बड़हर, सो अनूप अति ताके ॥
खिरनी पाकि खांड़ अस मीठी । जामुन पाकि भँवर अति डीठी ॥
नरियर फरे फरी फरहरी । फुरै जानु इंद्रासन पुरी ॥
पुनि महुआ चुअ अधिक मिठासू । मधु जस मीठ पहुप जस बासू ॥
और खजहजा अनबन नाऊँ । देखा सब राउन अमराऊँ ॥
लाग सबै जस अमृत साखा । रहै लोभाइ सो जो चाखा ॥
लवँग सुपारी जायफल सब फर फरे अपूर ।
आसपास घन इमिली औ घन तार खजूर ॥ 4 ॥

बसहिं पंखि बोलहिं बहु भाखा । करहिं हुलास देखि कै साखा ॥
भोर होत बोलहिं चुहचूही । बोलहिं पाँडुक 'एकै तूही' ॥
सारौं सुआ जो रहचह करहीं । कुरहिं परेवा औ करबरहीं ॥
'पीव पीव' कर लाग पपीहा । 'तुही तुही' कर गडुरी जीहा ॥
'कुहू कुहू' करि कोइल राखा । औ भिंगराज बोल बहु भाखा ॥
'दही दही' करि महरि पुकारा । हारिल बिनवै आपन हारा ॥
कुहुकहि मोर सोहावन लागा । होइ कुराहर बोलहिं कागा ॥
जावत पंखी जगत के भरि बैठे अमराउँ।
आपनि आपनि भाषा लेहिं दई कर नाउँ ॥ 5 ॥

पैग पैग पर कुवाँ बावरी । साजी बैठक और पाँवरी ॥
और कुंड बहु ठावहिं ठाऊँ । औ सब तीरथ तिन्ह के नाऊँ ॥
मठ मंडप चहुँ पास सँवारे । तपा जपा सब आसन मारे ॥
कोइ सु ऋषीसुर, कोइ संन्यासी । कोई रामजती बिसवासी ॥
कोई ब्रह्मचार पथ लागे । कोइ सो दिगंबर बिचरहिं नाँगे ॥
कोई सु महेसुर जंगम जती । कोई एक परखै देवी सती ॥
कोइ सुरसती कोई जोगी । कोइ निरास पथ बैठ बियोगी ॥
सेवरा, खेवरा, बानपर, सिध, साधक, अवधूत।
आसन मारे बैठ सब जारि आतमा भूत ॥ 6 ॥

मानसरोदक बरनौं काहा । भरा समुद अस अति अवगाहा ॥
पानि मोति अस निरमल तासू । अमृत आनि कपूर सुबासू ॥
लंकदीप कै सिला अनाई । बाँधा सरवर घाट बनाई ॥
खँड खँड सीढ़ी भईं गरेरी । उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी ॥
फूला कँवल रहा होइ राता । सहस सहस पखुरिन कर छाता ॥

उलथहिं सीप, मोति उतराहीं । चुगहिं हंस औ केलि कराहीं ॥
खनि पतार पानी तहँ काढ़ा । छीर समुद निकसा हुत बाढ़ा ॥[1]
ऊपर पाल चहूँ दिसि अमृत फल सब रूख ।
देखि रूप सरबर कै गै पियास औ भूख ॥ 7 ॥

पानि भरै आवहिं पनिहारी । रूप सुरूप पदमिनी नारी ॥
पदुमगंध तिन्ह अंग बसाहीं । भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं ॥
लंकसिंघिनी, सारगनैनी । हंसगामिनी कोकिलबैनी ॥
आवहिं झुंड सो पाँतिहि पाँती । गवन सोहाइ सु भाँतिहि भाँती ॥
कनक कलस मुखचन्द दिपाहीं । रहस केलि सन आवहिं जाहीं ॥
जा सहुँ वै हेरै चख नारी । बाँक नैन जनु हनहिं कटारी ॥
केस मेघावर सिर ता पाईं । चमकहिं दसन बीजु कै नाईं ॥
माथे कनक गागरी आवहिं रूप अनूप ।[2]
जेहि के अस पनिहारी सो रानी केहि रूप ॥ 8 ॥

ताल तलाब बरनि नहिं जाहीं । सूझै बार पार किछु नाहीं ॥
फूले कुमुद सेत उजियारे । मानहुँ उए गगन महँ तारे ॥
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी । चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी ॥
पौरहिं पंख सुसंगहिं संगा । सेत पीत राते बहु रंगा ॥
चकई चकवा केलि कराहीं । निसि के बिछोह, दिनहिं मिलि जाहीं ॥
कुररहिं सारस करहिं हुलासा । जीवन मरन सो एकहिं पासा ॥
घोलहिं सोन ढेक बगलेदी । रही अबोल मौन जल भेदी ॥
नग अमोल तेहि तालहिं दिनहिं बरहिं जस दीप ।
जो मरजीया होइ तहँ सो पावै वह सीप ॥ 9 ॥

आस पास बहु अमृत बारी । फरीं अपूर होइ रखवारी ॥
नारँग नींबू सुरँग जँभीरा । औ बदाम बहु भेद अँजीरा ॥
गलगल तुरँज सदा फर फरे । नारँग अति राते रस भरे ॥
किसमिस सेव फरे नौ पाता । दारिउँ दाख देखि मन राता ॥
लागि सुहाई हरफारयोरी । उनै रही केरा कै घौरी ॥
फरे तूत कमरख औ न्यौजी । रायकरौंदा बेर चिरौंजी ॥
संगतरा व छुहारा दीठे । और खजहजा खाटे मीठे ॥
पानि देहिं खँड़बानी कुवहिं खाँड़ बहु मेलि ।
लागी घरी रहट कै सींचहिं अमृतबेलि ॥10 ॥

---

1. कुछ प्रतियों में इस चौपाई के स्थान पर यह है—कनक पंखि पौरहिं अति लोने । जानहु चित्र लिखे सब सोने ।
2. पाठांतर—मानहु मैन मूरती अछरी बरन अनूप ।

पुनि फुलवारि लागि चहुँ पासा । बिरिछ बेधि चंदन भइ बासा ॥
बहुत फूल फूलीं घनबेली । केवड़ा चंपा कुंद चमेली ॥
सुरँग गुलाल कदम औ कूजा । सुगँध बकौरी गंध्रब पूजा ॥
जाही जूही बगुचन लावा । पुहुप सुदरसन लाग सुहावा ॥
नागेसर सदबरग नेवारीं । औ सिंगारहार फुलवारीं ॥
सोनजरद फूलीं सेवती । रूपमंजरी और मालती ॥
मौलसिरी बेइलि औ करना । सबै फूल फूले बहुबरना ॥
तेहिं सिर फूल चढ़हिं वै जेहि माथे मनि भाग ।
आछहिं सदा सुगंध बहु जनु बसंत औ फाग ॥ 11 ॥

सिंघलनगर देखु पुनि बसा । धनि राजा अस जे कै दसा ॥
ऊँची पौरी ऊँच अवासा । जनु कैलास इंद्र कर बासा ॥
राव रंक सब घर-घर सुखी । जो दीखै सो हँसता मुखी ॥
रचि रचि साजे चंदन चौरा । पोतें अगर भेद औ गौरा ॥
सथ चैपारहिं चंदन खँभा । ओठँघि सभापति बैठे सभा ॥
मनहुँ सभा देवतन्ह कर जुरी । परी दीठि इन्द्रासन पुरी ॥
सबै गुनी औ पंडित ज्ञाता । संसकिरित सबके मुख बाता ॥
अस कै मँदिर सँवारे, जनु सिवलोक अनूप ।
घर घर नारि पदमिनी मोहहि सरसन रूप ॥ 12 ॥

पुनि देखी सिंघल कै हाटा । नवौ निधि लछिमी सब बाटा ॥
कनक हाट सब कुहकुहँ लीपी । बैठ महाजन सिंघलदीपी ॥
रचहिं हथौड़ा रूपन ढारी । चित्र कटाव अनेक सँवारी ॥
सोन रूप भल भयउ पसारा । धवल सिरी पोतहिं घर बारा ॥
रतन पदारथ मानिक मोती । हीरा लाल सो अनबन जोती ॥
औ कपूर बेना कस्तूरी । चंदन अगर रहा भरपूरी ॥
जिन्ह एहि हाट न लीन्ह बेसाहा । ता कहँ आन हाट कित लाहा ॥
कोई करै बेसाहनी, काहू केर बिकाइ ।
कोई चलै लाभ सन, कोई मूर गँवाइ ॥ 13 ॥

पुनि सिंगारहाट भल देसा । किए सिंगार बैठीं तहँ बेसा ॥
मुख तमोल, तन चीर कुसुंभी । कानन कनक जड़ाऊ खुंभी ॥
हाथ बीन सुनि मिरिग भुलाहीं । नर मोहहिं सुनि, पैग न जाहीं ॥
भौंह धनुष, तिन्ह नैन अहेरी । मारहिं बान सान सौं फेरी ॥
अलक कपोल डोल, हँसि देहीं । लाइ कटाछ मारि जिउ लेहीं ॥
कुच कंचुक जानौ जुग सारी । अंचल देहिं सुभावहिं ढारी ॥
केत खिलार हारि तेहि पासा । हाथ झारि उठि चलहिं निरासा ॥

चेटक लाइ हरहिं मन, जब लगि होइ गथ फेंट ।
साँठ नाठि उठि भए बटाऊ, ना पहिचान न भेंट ॥ 14 ॥

लेइ के फूल बैठि फुलहारी । पान अपूरब धरे सँवारी ॥
सोंधा सबै बैठ लै गाँधी । फूल कपूर खिरौरी बाँधी ॥
कतहुँ पंडित पढ़हिं पुरानू । धरमपंथ कर करहिं बखानू ॥
कतहुँ कथा कहै किछु कोई । कतहुँ नाच कूद भल होई ॥
कतहुँ चिरहँटा पंखी लावा । कतहुँ पखंडी काठ नचावा ॥
कतहुँ नाद सबद होइ भला । कतहुँ नाटक चेटक कला ॥
कतहुँ काहु ठगविद्या लाई । कतहुँ लेहिं मानुष बौराई ॥
चरपट चोर गँठिछोरा मिले रहहिं ओहि नाच ।
जो ओहि हाट सजग भा गथ ताकर पै बाँच ॥ 15 ॥

पुनि आए सिंघल गढ़ पासा । का बरनौं जनु लाग अकासा ॥
तरहिं करिन्ह बासुकि कै पीठी । ऊपर इंद्र लोक पर दीठी ॥
परा खोह चहुँ दिसि अस बाँका । काँपै जाँघ, जाइ नहिं झाँका ॥
अगम असूझ देखि डर खाई । परै सो सपत पतारहिं जाई ॥
नव पौरी बाँकी, नवखंडा । नवौ जो चढ़ै जाइ बरम्हंडा ॥
कंचन कोट जरे नग सीसा । नखतहिं भरी बीजु जनु दीसा ॥
लंका चाहि ऊँच गढ़ ताका । निरखि न जाइ, दीठि तन थाका ॥
हिय न समाइ दीठि नहिं जानहुँ ठाढ़ सुमेर ।
कहँ लगि कहौं ऊँचाई, कहँ लगि बरनौं फेर ॥ 16 ॥
निति गढ़ बाँचि चलै ससि सूरू । नाहि त होइ बाजि रथ चूरू ॥
पौरी नवौ बज्र कै साजी । सहस सहस तहँ बैठै पाजी ॥
फिरहिं पाँच कोतवार सुभौंरी । काँपै पावै चपत वह पौरी ॥
पौरिहिं पौरि सिंह गढ़ि काढ़े । डरपहिं लोग देखि तहँ ठाढ़े ॥
बहुविधान वै नाहर गढ़े । जनु गाजहिं, चाहहिं सिर चढ़े ॥
टारहिं पूँछ, पसारहिं जीहा । कुंजर डरहिं कि गुंजरि लीहा ॥
कनक सिला गढ़ि सीढ़ी लाई । जगमगाहिं गढ़ ऊपर ताईं ॥
नवौं खंड नव पौरी औ तहँ बज्र केवार ।
चारि बसेरे सौं चढ़ै सत सौं उतरै पार ॥ 17 ॥
नव पौरी पर दसवँ दुवारा । तेहि पर बाज राज घरियारा ॥
घरी सो बैठि गनै घरियारी । पहर पहर सो आपनि बारी ॥
जबहीं घरी पूजि तेईं मारा । घरी घरी घरियार पुकारा ॥
परा जो डाँड़ जगत सब डाँड़ा । का निश्चिंत माटी कर भाँड़ा ॥
तुम्ह तेहि चाक चढ़े हौ काँचे । आएहु रहै न थिर होइ बाँचे ॥
घरी जो भरी घटी तुम्ह आऊ । का निचिन्त होइ सोउ बटाऊ ॥
पहरहिं पहर गजर निति होई । हिया बजर, मन जाग न सोई ॥
मुहमद जीवन जल भरन, रहँट घरी कै रीति ।
घरी जो आई ज्यों भरी, घरी, जनम गा बीति ॥ 18 ॥
गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी । पनिहारी जैसे दुरपदी ॥
और कुंड एक मोतीचूरू । पानी अमृत कीच कपूरू ॥
ओहि कै पानि राजा, पै पीया । बिरिध होइ नहिं जौ लहि जीया ॥
कंचन-बिरिछ एक तेहि पासा । जस कलपतरु इंद्र कबिलासा ॥
मूल पतार, सरग ओहि साखा । अमरबेलि को पाव को चाखा ॥
चाँद पात औ फूल तराईं । होइ उजियार नगर जहँ ताईं ॥
वह फल पावै तप करि कोई । बिरिध खाइ तौ जोवन होई ॥
राजा भए भिखारी, सुनि वह अमृत भोग ।
जेइ पावा सो अमर भा, ना किछु ब्याधि न रोग ॥ 19 ॥
गढ़ पर बसहिं चार गढ़पती । असुपति, गजपति, भू-नर पती ॥
सब धौराहर सोने साजा । अपने अपने घर सब राजा ॥
रूपवंत धनवंत सभागे । परस पखान पौरि तिन्ह लागे ॥
भोग-विलास सदा सब माना । दुख चिंता कोई जनम न जाना ॥
मँदिर मँदिर सब के चौपारी । बैठि कुँवर सब खेलहिं सारी ॥
पासा ढरहिं खेल भल होई । खड़गदान सरि पूज न कोई ॥
भाँट बरनि कहि कीरति भली । पावहिं हस्ति घोड़ सिंघली ॥

मँदिर मँदिर फुलवारी, चोवा चंदन बास।
निसि दिन रहै बसंत तहँ, छवौ ऋतु बारह मास॥ 20॥

पुनि चलि देखा राज दुआरा। मानुष फिरहिं पाइ नहीं बारा॥
हस्ति सिंघली बाँधे बारा। जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा॥
कौनौ सेत पीत रतनारे। कौनौ हरे, धूम औ कारे॥
बरनहिं बरन गगन जस मेघा। औ तिन्ह गगन पीठि जनु ठेघा॥
सिंघल के बरनौं सिंघली। एक एक चाहि एक एक बली॥
गिरि पहार वै पैगहि पेलहिं। बिरिछ उचारि डारि मुख मेलहिं॥
माते तेइ सब गरजहिं बाँधे। निसि दिन रहहिं महाउत काँधे॥

धरती भार न अँगवै, पाँव धरत उठ हालि।
कुरुम टुटै, भुइँ फाटै तिन हस्तिन्ह के चालि॥ 21॥

पुनि बाँधे रजवार तुरंगा। का बरनौं जस उन्हकै रंगा॥
लील, समंद चाल जग जाने। हाँसुल, भौंर गियाह बखाने॥
हरे, कुरंग, महुअ बहु भाँती। गरर, कोकाह, बुलाह सु पाँती॥
तीख तुखार चाँड़ औ बाँके। सँचरहिं पौरि ताज बिनु हाँके॥
मन तें अगमन डोलहिं बागा। लेत उसास गगन सिर लागा॥
पौन समान समुद पर धावहिं। बूड़ न पाँव, पार होइ आवहिं॥
थिर न रहहिं, रिस लोह चबाहीं। भाँजहिं पूँछ, सीस उपराहीं॥

अस तुखार सब देखे जनु मन के रथवाह।
नैन पलक पहुँचावहिं जहँ पहुँचा कोइ चाह॥ 22॥

राजसभा पुनि देख बईठी। इंद्रसभा जनु परिगै डीठी॥
धनि राजा असि सभा सँवारी। जानहु फूलि रही फुलवारी॥
मुकुट बाँधि सब बैठे राजा। दर निसान नित जिन्हके बाजा॥
रूपवंत, मनि दिपै लिलाटा। माथे छात, बैठ सब पाटा॥
मानहुँ कँवल सरोवर फूले। सभा क रूप देखि मन भूले॥
पान कपूर भेद कस्तूरी। सुगँध बास भरि रही अपूरी॥
माँझ ऊँच इंद्रासन साजा। गंधबसेन बैठ तहँ राजा॥

छत्र गगन लगि ताकर, सूर तवै जस आप।
सभा कँवल अस बिगसै, माथे बड़ परताप॥ 23॥

साजा राजमँदिर कैलासू। सोने कर सब धरति अकासू॥
सात खंड धौराहर साजा। उहै सँवारि सकै अस राजा॥
हीरा ईंट, कपूर गिलावा। औ नग लाइ सरग लै लावा॥
जावत सबै उरेह उरेहे। भाँति-भाँति नग लाग उबेहे॥
भा कटाव सब अनवत भाँती। चित्र कोरि कै पाँतिहिं पाँती॥
लाग खंभ-मनि-मानिक जरे। निसि दिन रहहिं दीप जनु बरे॥
देखि धौरहर कर उँजियारा। छपि गए चाँद सुरुज औ तारा॥

सुना सात बैकुंठ जस, तस साजे खँड सात।
बेहर बेहर भाव तस, खंड खंड उपरात॥ 24॥

बरनौं राजमँदिर रनिवासू । जनु अछरीन्ह भरा कबिलासू ॥
सोरह सहस पदमिनी रानी । एक एक तें रूप बखानी ॥
अति सुरूप औ अति सुकुवाँरी । पान फूल के रहहिं अधारी ॥
तिन्ह ऊपर चंपावति रानी । महा सुरूप पाट-परधानी ॥
पाट बैठि रह किए सिंगारू । सब रानी ओहि करहिं जोहारू ॥
निति नौरंग सुरंगम सोई । प्रथम बैस नहिं सरवरि कोई ॥
सकल दीप महँ जेती रानी । तिन्ह महँ दीपक बारह-बानी ॥
कुँवरि बतीसो लच्छनी, अस सब माँह अनूप ।
जावत सिंघलदीप के, सबै बखानैं रूप ॥25॥

शब्दार्थ : (1) बारी = बाला, स्त्री। सरनदीप = अरब वाले लंका को सरनदीप कहते थे। भूगोल का ठीक ज्ञान न होने के कारण कवि ने स्वर्णद्वीप और सिंहल को भिन्न-भिन्न द्वीप माना है। हरा = शून्य।

(2) तुखार = तुषार देश का घोड़ा। इंदू = इंद्र। चाहि = अपेक्षा (बढ़कर), बनिस्बत। कबिलास = स्वर्ग।

(3) भूमि हुत = पृथ्वी से (लेकर)। लागि = तक।

(4) पींड = जड़ के पास की पेड़ी। फुरै = सचमुच। खजहजा = खाने के फल। अनबन = भिन्न-भिन्न।

(5) चुहचूही = एक छोटी चिड़िया जिसे फुलसुँघनी भी कहते हैं। सारौं = सारिका, मैना। महरि = महोख से मिलती-जुलती एक छोटी सी चिड़िया जिसे ग्वालिन और अहीरिन भी कहते हैं। हारा = हाल, अथवा लाचारी, दीनता।

(6) पैग पैग पर = कदम-कदम पर। पाँवरी = सीढ़ी। ब्रह्मचार = ब्रह्मचर्य। सुरसती = सरस्वती (दसनामियों में)। खेवरा-सेवड़ों का एक भेद।

(7) भई = घूमी हैं। गरेरी = चक्करदार। पाल = ऊँचा बाँध या किनारा, भाटा।

(8) मेघावर = बादल की घटा। ता पाईं = पैर तक। बीजु = बिजली।

(9) बानी = वर्ण, रंग, चमक। सोन = ढेक, बगलेदी = ताल की चिड़ियाँ। मरजीया = जान जोखिम में डालकर विकट स्थानों से व्यापार की वस्तुएँ लाने वाले, जीवकिया, जैसे, गोताखोर।

(10) हरफारयोरी = लवली। न्योजी = लीची। खँड़वानी = खाँड़ का रस।

(11) कूजा = कुब्जक। पहाड़ी या जंगली गुलाब जिसके फूल सफेद होते हैं। धनबेली = बेला की एक जाति। नागेसर = नागकेसर। बकौरी = बकावली। बगुचा = (गट्ठा) ढेर, राशि। सिंगारहार = हरिसिंगार, शेफालिका।

(12) मेद = मेदा, एक सुगंधित जड़। गौरा = गोरोचन। ओठँघि = पीठ टिकाकर।

(13) कुहकुहँ = कुंकुम, केसर। धवल = सफेदी। सिरी = श्री, रोली, लाल बुकनी (श्री का चिह्न तिलक में रोली से बनाते हैं इसी से रोली को श्री कहते हैं) दुकानदार प्राय: सिन्दूर, रोली आदि के चिह्न दुकानों पर बनाते हैं। बेना = खस या गंधबेन। बेसाहनी = खरीद।

(14) बेसा = वैश्या। खुंभी = कान में पहनने का एक गहना, लौंग या कील। सारी = सारि, पासा। गथ = पूँजी। साँठ = पूँजी। नाठि = नष्ट हुई।

(15) सोंधा = सुगंध द्रव्य। गाँधी = गंधी। खिरौरी = केवड़ा देकर बाँधी हुई खैर या कत्थे की टिकिया। चिरहँटा = बहेलिया। पखंडी = कठपुतली वाला।

(16) करिन्ह = दिग्गजों।

(17) पाजी = पैदल सिपाही। कोतवार = कोटपाल, कोतवाल। गूँजरि लीहा = गरजकर लिया। बसेरा = टिकान।

(18) रहँट-घरी = रहट में लगा छोटा घड़ा। घरियार = घंटा। घरी भरी = घड़ी पूरी हुई।

(19) पुराने समय में समय जानने के लिए पानी भरी नाँद में एक घड़िया या कटोरा महीन महीन छेद करके तैरा दिया जाता था। जब पानी भर जाने से घड़िया डूब जाती थी तब एक घड़ी का बीतना माना जाता था।

(20) परस पखान = स्पर्शमणि, पारस पत्थर। सारी = पासा। झारि = बिलकुल या समूह। सरि पूज = बराबरी को पहुँचता है। खड़गदान = तलवार चलाना।

(21) बारा = द्वार। ठेघा = सहारा दिया। अँगवै = शरीर पर सहती है।

(22) रजवार = राजद्वार। समंद = बादामी रंग का घोड़ा। हाँसुल = कुम्मैत हिनाई, मेहंदी के रंग का और पैर कुछ काले। भौंर = मुश्की। कियाह = ताड़ के पके फल के रंग का। हरे = सब्जा। कुरंग = लाख के रंग का या नीला कुम्मैत। महुअ = महुए के रंग का। गरर = लाल और सफेद मिले रोएँ का, गर्रा। कोकाह = सफेद रंग का। बुलाह = बोल्लाह, गर्दन और पूँछ के बाल पीले। ताज = ताजियाना, चाबुक। अगमन = आगे। तुखार = तुषार देश के घोड़े, यहाँ घोड़े।

(23) दर = दरवाजा। मेदमेदा, एक प्रकार की सुगंधित जड़। तवै = तपता है।

(24) उरेह = चित्र। उबेहे = चुने हुए, बीछे हुए। कोरिकै = खोदकर। बेहर बेहर = अलग अलग।

(25) बारहबानी = द्वादशवर्णी, सूर्य की तरह चमकने वाली।

munotes.in

नागमती-वियोग खंड

नागमती चितउर पथ हेरा। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा॥
नागर काहु नारि बस परा। तेइ मोर पिउ मोसौं हरा॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात बरु जीऊ॥
भएउ नरायन बावँन करा। राज करत राजा बलि छरा॥
करन पास लीन्हेउ कै छंदू। बिप्र रूप धरि झिलमिल इंदू॥
मानत भोग गोपिचँद भोगी। लेइ अपसवा जलंधर जोगी॥
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी। कठिन बिछोह, जियहिं किमि गोपी॥
सारस जोरी कौन हरि, मारि बियाधा लीन्ह।
झुरि झुरि पींजर हौं भई, बिरह काल मोहि दीन्ह॥ 1॥
पिउ बियोग अस बाउर जीऊ। पपिहा निति बोले 'पिउ पीऊ॥'
अधिक काम दाधे सो रामा। हरि लेइ सुवा गएउ पिउ नामा॥
बिरह बान तस लाग न डोली। रक्त पसीज, भीजि गई चोली॥
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे हरे प्रान तजहिं सब नारी॥
खन एक आव पेट महँ! सांसा। खनहिं जाइ जिउ, होइ निरासा॥
पवन डोलावहिं सींचहिं चोला। पहर एक समुझहिं मुख बोला॥
प्रान पयान होत को राखा। को सुनाव पीतम कै भाखा॥
आजि जो मारै बिरह कै, आगि उठै तेहि लागि।
हंस जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा, गा भागि॥ 2॥
पाट महादेइ हिये न हारू। समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा। सँवरि नेह मालति पहँ आवा॥
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती। टेकु पियास, बाँधु मन थीती॥
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा। पलटि आव बरषा ऋतु मेहा॥
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली। सो रस, सो मधुकर, सो बेली॥
जिनि अस जीव करसि तू बारी। यह तरिवर पुनि उठिहि सवारी॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा। पुनि सोइ सरवर सोई हंसा॥
मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि अहंत।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत॥ 3॥

चढ़ा असाढ़, गगन घन गाजा। साजा बिरह दुंद दल बाजा॥
धूम, साम, धौरे घन धाए। सेत धजा बग पाँति देखाए॥
खड़ग बीजु चमकै चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा॥
ओनई घटा आइ चहुँ फेरी। कंत! उबारु मदन हौं घेरी॥
दादुर मोर कोकिला, पीऊ। गिरै बीजु, घट रहै न जीऊ॥
पुष्य नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह, मँदिर को छावा॥
अद्रा लाग लागि भुइँ लेई। मोहिं बिनु पिउ को आदर देई॥
जिन्ह घर कंता ते सुखी, तिन्ह गारौ औ गर्ब।
कंत पियारा बाहिरै, हम सुख भूला सर्ब॥ 4॥
सावन बरस मेह अति पानी। भरनि परी, हौं बिरह झुरानी॥
लाग पुनरबसु पीउ न देखा। भइ बाउरि, कहँ कंत सरेखा॥
रकत कै आँसु परहिं भुइँ टूटी। रेंगि चलीं जस बीरबहूटी॥
सखिन्ह रचा पिउ संग हिंडोला। हरियरि भूमि, कुसुंभी चोला॥
हिय हिंडोल अस डोलै मोरा। बिरह झुलाइ देइ झकझोरा॥
बाट असूझ अथाह गँभीरी। जिउ बाउर, भा फिरै भँभीरी॥
जग जल बूड़ जहाँ लगि ताकी। मोरि नाव खेवक बिनु थाकी॥

परबत समुद अगम बिच, बीहड़ वन बनढाँख।
किमि कै भेंटौं कंत तुम्ह, ना मोहि पाँव न पाँख॥ 5॥
भा भादों दूभर अति भारी। कैसे भरौं रैनि अँधियारी॥
मँदिर सून पिउ अनतै बसा। सेज नागिनी फिरि फिरि डसा॥
रहौं अकेलि गहे एक पाटी। नैन पसारि मरौं हिय फाटी॥
चमकि बीजु घन गरजि तरासा। बिरह काल होइ जीउ गरासा॥
बरसै मघा झकोरि झकोरी। मोर दुइ नैन चुवैं जस ओरी॥
धनि सूखै भरे भादौं माहा। अबहूँ न आएन्हि सींचेन्हि नाहा॥
पुरवा लाग भूमि जल पूरी। आग जवास भई तस झूरी॥
थल जल भरे अपूर सब, धरति गगन मिलि एक।
धनि जोबन अवगाह महँ, दे बूड़त, पिउ! टेक॥ 6॥
लाग कुवार, नीर जग घटा। अबहुँ आउ कंत तन लटा॥
तोहि देखे पिउ! पलुहै कया। उतरा चीतु बहुरि करु मया॥
चित्रा मित्र मीन कर आवा। पपिहा पीउ पुकारत पावा॥
उआ अगस्त, हस्ति घन गाजा। तुरय पलानि चढ़े रन राजा॥
स्वाति बूँद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवर सँवरि हंस चलि आए। सारस कुरलहिं, खंजन देखाए॥
भा परगास, काँस बन फूले। कंत न फिरे बिदेसहि भूले॥

बिरह हस्ति तन सालै, धाय करै चित चूर।
बेगि आइ, पिउ बाजहु, गाजहु होइ सदूर॥ 7॥
कातिक सरद चंद उजियारी। जग सीतल, हौं बिरहै जारी॥
चौदह करा चाँद परगासा। जनहुँ जरै सब धरति अकासा॥
तन मन सेज करै अगिदाहू। सब कहँ चंद, भएउ मोहि राहू॥
चहूँ खंड लागै अँधियारा। जौं घर नाही कंत पियारा॥
अबहूँ निठुर! आउ एहि बारा। परब देवारी होइ संसारा॥
सखि झूमक गावैं अँग मोरी। हौं झुरावैं, बिछुरी मोरि जोरी॥
जेहि घर पिउ सो मनोरथ पूजा। मो कहँ बिरह, सवति दुख दूजा॥
सखि मानैं तिउहार सब, गाइ देवारी खेलि।
हौं का गावौं कंत बिनु रही छार सिर मेलि॥ 8॥
अगहन दिवस घटा निसि बाढ़ी। दूभर रैनि, जाइ किमि गाढ़ी॥
अब यहि बिरह दिवस भा राती। जरौं बिरह जस दीपक बाती॥
काँपि हिया जनावै सीऊ। तौ पै जाइ होइ सँग पीऊ॥
घर घर चीर रचे सब काहू। मोर रूप रँग लेइगा नाहू॥
पलटि न बहुरा गा जो बिछोई। अबहूँ फिरै फिरै रँग सोई॥
बज्र अगिनि बिरहिनि हिय जारा। सुलुगि सुलुगि दगधै होइ छारा॥
यह दुख दगध न जानै कंतू। जोबन जनम करै भसमंतू॥
पिउ सौं कहेउ सँदेसड़ा, हे भौंरा हे काग!
सो धनि बिरहै जरि मुई, तेहि क धुआँ हम्ह लाग॥ 9॥
पूस जाड़ थर थर तन काँपा। सुरुज जाइ लंका दिसि चाँपा॥
बिरह बाढ़, दारुन भा सीऊ। कँपि कँपि मरौं, लेइ हरि जीऊ॥
कंत कहाँ लागौं औहि हियरे। पंथ अपार, सूझ नहिं नियरे॥
सौंर सपेती आवै जूड़ी। जानहु सेज हिवंचल बूड़ी॥
चकई निसि बिछुरै दिन मिला। हौं दिन राति बिरह कोकिला॥
रैनि अकेलि साथ नहिं सखी। कै से जियै बिछोही पखी॥
बिरह सचान भएउ तन जाड़ा। जियत खाइ औ मुए न छाँड़ा॥

रकत ढुरा माँसू गरा, हाड़ भएउ सब संख।
धनि सारस होइ ररि मुई, पीउ समेटहि पंख॥ 10॥

लागेउ माघ परै अब पाला। बिरहा काल भएउ जड़काला॥
पहल पहल तन रूई झाँपै। हहरि हहरि अधिकौ हिय काँपै॥
आइ सूर होइ तपु, रे नाहा। तोहि बिनु जाड़ न छूटै माहा॥
एहि माह उपजै रसमूलू। तूँ सो भौंर मोर जोबन फूलू॥
नैन चुवहिं जस महवट नीरू। तोहि बिनु अंग लाग सर चीरू॥

टप टप बूँद परहिं अस ओला। बिरह पवन होइ मारै झोला॥
केहि क सिंगार, को पहिरु पटोरा। गीउ न हार, रही होइ डोरा॥
तुम बिनु काँपै धनि हिया, तन तिनउर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराइ कै, चहै उड़ावा झोल॥ 11॥

फागुन पवन झकोरा बहा। चौगुन सीउ जाइ नहिं सहा॥
तन जस पियर पात भा मोरा। तेहि पर बिरह देइ झकझोरा॥
तरिवर झरहिं, झरहिं बन ढाखा। भइ ओनंत फूलि फरि साखा॥
करहिं बनसपति हिये हुलासू। मो कहँ भा जग दून उदासू॥
फागु करहिं सब चाँचरि जोरी। मोहिं तन लाइ दीन्ह जस होरी॥
जो पै पीउ जरत अस पावा। जरत मरत मोहिं रोष न आवा॥
राति दिवस बस यह जिउ मोरे। लागौं निहोर कंत अब तोरे॥
यह तन जारौं छार कै, कहौं कि पवन उड़ाव।
मकु तेहि मारग उड़ि परै, कंत धरै जहँ पाव॥ 12॥

चैत बसंता होइ धमारी। मोहिं लेखे संसार उजारी॥
पंचम बिरह पंच सर मारै। रकत रोइ सगरौं बन ढारै॥
बूड़ि उठे सब तरिवर पाता। भीजि मजीठ, टेसु बन राता॥
बौरे आम फरै अब लागे। अबहुँ आउ घर, कंत सभागे॥
सहस भाव फूलीं बनसपती। मधुकर घूमहिं सँवरि मालती॥
मोकहँ फूल भए सब काँटे। दिस्टि परत जस लागहिं चाँटे॥
फरि जोबन भए नारँग साखा। सुआ बिरह अब जाइ न राखा॥
घिरिनि परेवा होइ पिउ, आउ बेगि परु टूटि।
नारि पराए हाथ है, तोहि बिनु पाव न छूटि॥ 13॥

भा बैसाख तपनि अति लागी। चोआ चीर चँदन भा आगी॥
सूरुज जरत हिवंचल ताका। बिरह बजागि सौंह रथ हाँका॥
जरत बजागिनि करु, पिउ छाहाँ। आइ बुझाउ, अँगारन्ह माहाँ॥
तोहि दरसन होइ सीतल नारी। आइ आगि तें करु फुलवारी॥
लागिउँ जरै जरै जस भारू। फिरि फिरि भूँजेसि, तजिउँन बारू॥
सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइकै बिहराई॥
बिहरत हिया करहु पिउ! टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका॥
कँवल जो बिगसा मानसर, बिनु जल गएउ सुखाइ।
कबहुँ बेलि फिरि पलुहै, जौ पिउ सींचै आइ॥ 14॥

जेठ जरै जग, चलै लुवारा। उठहिं बवंडर परहिं अँगारा॥
बिरह गाजि हनुवँत होइ जागा। लंकादाह करै तनु लागा॥
चारिहु पवन झकोरै आगी। लंका दाहि पलंका लागी॥

दहि भइ साम नदी कालिंदी। बिरह क आगि कठिन अति मंदी॥
उठै आगि औ आवै आँधी। नैन न सूझ, मरौं दुःख बाँधी॥
अधजर भइउँ, माँसु तनु सूखा। लागेउ बिरह काल होइ भूखा॥
माँस खाइ सब हाड़न्ह लागै। अबहुँ आउ, आवत सुनि भागै॥
गिरि, समुद्र, ससि, मेघ, रवि, सहि न सकहिं वह आगि।
मुहमद सती सराहिए, जरै जो अस पिउ लागि॥15॥
तपै लागि अब जेठ असाढ़ी। तोहि पिउ बिनु छाजनि भइ गाढ़ी॥
तन तिनउर भा, झूरौं खरी। भइ बरखा, दुख आगरि जरी॥
बंध नाहिं औ कंध न कोई। बात न आव कहौं का रोई॥
माँठि नाठि, जग बात को पूछा। बिनु जिउ फिरै मूँज तनु छूँछा॥
भई दुहेली टेक बिहूनी। थाँभ नाहिं उठि सकै न थूनी॥
बरसै मेघ चुवहिं नैनाहा। छपर छपर होइ रहि बिनु नाहा॥
कोरौं कहाँ ठाट नव साजा। तुम बिनु कंत न छाजनि छाजा॥
अबहुँ मया दिस्टि करि, नाह निठुर घर आउ।
मँदिर उजार होत है, नव कै आइ बसाउ॥ 16॥
रोइ गँवाए बारह मासा। सहस सहस दुख एक एक साँसा॥
तिल तिल बरख बरख पर जाई। पहर पहर जुग जुग न सेराई॥
सो नहिं आवै रूप मुरारी। जासौं पाव सोहाग सुनारी॥
साँझ भए झुरि झुरि पथ हेरा। कौनि सो घरी करै पिउ फेरा॥
दहि कोइला भइ कंत सनेहा। तोला माँसु रही नहिं देहा॥
रकत न रहा बिरह तन गरा। रती रती होइ नैनन्ह ढरा॥
पाय लागि जोरै धनि हाथा। जारा नेह जुड़ावहु नाथा॥
बरस दिवस धनि रोइ कै, हारि परी चित झाँखि।
मानसु घर घर बूझि कै, बूझै निसरी पाँखि॥ 17॥
भई पुछार, लीन्ह बनबासू। बैरिनि सवति दीन्ह चिलबाँसू॥
होइ खर बान बिरह तनु लागा। जौ पिउ आवै उड़हि तौ कागा॥
हारिल भई पंथ मैं सेवा। अब तहँ पठवौं कौन परेवा॥
धौरी पंडुक कहु पिउ नाऊँ। जौं चितरोख न दूसर ठाऊँ॥
जाहि बया होइ पिउ कैंठ लवा। करै मेराव सोइ गौरवा॥
कोइल भई पुकारति रही। महरि पुकारै लेइ लेइ दही॥
पेड़ तिलोरी औ जल हंसा। हिरदय पैठि बिरह कटनंसा॥
जेहि पंखी के निअर होइ, कहै बिरह कै बात।
सोइ पंखी जाइ जरि, तरिवर होइ निपात॥ 18॥

कुहुकि कुहुकि जस कोइल रोई। रकत आँसु घुँघची बन बोई॥
भइ करमुखी नैन तन राती। को सेराव बिरहा दुख ताती॥
जहँ जहँ ठाढ़ि होइ बनबासी। तहँ तहँ होइ घुँघचि कै रासी॥
बूँद बूँद महँ जानहुँ जीऊ। गुंजा गूँजि करै पिउ पीऊ॥
तेहि दुख भए परास निपाते। लोहू बूड़ि उठे होइ राते॥
राते बिंब भीजि तेहि लोहू। परवर पाक, फाट हिय गोहूँ॥
देखौं जहाँ होइ सोइ राता। जहाँ सो रतन कहै को बाता॥
नहिं पावस ओहि देसरा, नहिं हेवंत बसंत।
ना कोकिल न पपीहरा, जेहि सुनि आवै कंत॥19॥

शब्दार्थ : (1) पथ हेरा = रास्ता देखती है। नागर = नायक। बाबँन करा = वामन रूप। छरा = छला। करन = राजा कर्ण। छंदू = छलछंद, धूर्तता। झिलमिल = कवच (सीकड़ों का)। अपसवा = चल दिया। पींजर = पंजर, ठठरी।

(2) बाउर = बावला। हरे-हरे = धीरे-धीरे। नारी = नाड़ी। चोला = शरीर। पहर एक...बोला = इतना अस्पष्ट बोल निकलता है कि मतलब समझने में पहरों लग जाते हैं। हंस = हंस और जीव।

(3) पाट महादेइ = पट्टमहादेवी, पटरानी। मेरावा = मिलाप। टेकु पियास = प्यास सह। बाँधु मन थीती = मन में स्थिरता बाँध। जिनि = मत। पलुहंत = पल्लवित होते हैं, पलते हैं।

(4) गाजा = गरजा। धूम = धूमले रंग के। धौरे = धवल, सफेद। ओनई = झुकी। लेई लागि = खेतों में लेवा लगा, खेत में पानी भर गया। गारौ = गौरव, अभिमान (प्राकृत—गारव, 'आ च गौरवे')।

(5) मेह = मेघ। भरनि परी = खेतों में भरनी लगी। सरेख = चतुर। भँभीरी = एक प्रकार का फतिंगा जो संध्या के समय बरसात में आकाश में उड़ता दिखाई पड़ता है।

(6) दूभर = भारी, कठिन। भरौं = काटूँ, बिताऊँ; जैसे—नैहर जनम भरब बरु जाई—तुलसी। अनतै = अन्यत्र। तरासा = डराता है। ओरी = ओलती। पुरवा = एक नक्षत्र।

(7) लटा = शिथिल हुआ। पलुहै = पनपती है। उतरा चीतु = चित्त से उतरी या भूली बात ध्यान में ला। चित्रा = एक नक्षत्र। तुरय = घोड़ा। पलानि = जीन कसकर। घाय = घाव। बाजहु = लड़ो। गाजहु = गरजो। सदूर = शार्दूल, सिंह।

(8) झूमक = मनोरा झूमक नाम का गीत। झुरावैं = सूखती हूँ। जनम = जीवन।

(9) दूभर = भारी, कठिन। नाह = नाथ। सो धनि बिरहै...लाग = अर्थात् वही धुआँ लगने के कारण मानो भौंरे और कौए काले हो गए।

(10) लंका दिसि = दक्षिण दिशा को। चाँपा जाइ = दबा जाता है। कोकिला = जलकर कोयल (काली) हो गई। सचान = बाज। जाड़ा = जाड़े में। ररि मुई = रटकर मर गई। पीउ...पंख = प्रिय आकर अब पर समेटे।

(11) जड़काला = जाड़े के मौसम में। माहा = माघ में। महवट = मघवट, माघ की झड़ी। चीरू = चीर, घाव। सर = बाण। झोला मारना = बात के प्रकोप से अंग का सुन्न हो जाना। केहि क सिंगार = किसका शृंगार, कहाँ का शृंगार करना। पटोरा = एक प्रकार का रेशमी कपड़ा। डोरा = क्षीण होकर डोरे के समान पतली। तिनउर = तिनके का समूह। झोल = राख, भस्म; जैसे—'आगि जो लागी समुद में टुटि टुटि खसै जो झोल'—कबीर।

(12) ओनंत = झुकी हुई। निहोर लगौं = यह शरीर तुम्हारे निहोरे लग जाए, तुम्हारे काम आ जाए।

(13) पंचम = कोकिल का स्वर या पंचम राग। (वसंत पंचमी माघ में ही हो जाती है इससे 'पंचमी' अर्थ नहीं ले सकते) सगरौं = सारे। बूड़ि उठे...पाता = नए पत्तों में ललाई मानो रक्त में भीगने के कारण है। घिरिनि परेवा = गिरहबाज कबूतर या कौड़िल्ला पक्षी। नारि = (क) नाड़ी, (ख) स्त्री।

(14) हिवंचल ताका = उत्तरायण हुआ। बिरह बजागि...हाँका = सूर्य तो सामने से हटकर उत्तर की ओर खिसका हुआ चलता है, उसके स्थान पर विरहाग्नि से सीधे मेरी ओर रथ हाँका। भारू = भाड़। सरवर हिया...बिहराई = तालों का पानी जब सूखने लगता है तब पानी सूखे हुए स्थान में बहुत सी दरारें पड़ जाती हैं जिससे बहुत से खाने कटे दिखाई पड़ते हैं। दवँगरा = वर्षा के आरम्भ की झड़ी। मेरवहु एका = दरारें पड़ने के कारण जो खंड-खंड हो गए हैं उन्हें मिलाकर फिर एक कर दो। बड़ी सुन्दर उक्ति है।

(15) लूवार = लू। गाजि = गरजकर। पलंका = पलँग। मंदी = धीरे-धीरे जलाने वाली।

(16) तिनउर = तिनकों का ठाट। झूरौं = सूखती हूँ। बंध = ठाट बाँधने के लिए रस्सी। कंध न कोई = अपने ऊपर (सहायक) भी कोई नहीं है। साँठि नाठि = पूँजी नष्ट हुई। मूँज तनु छूँछ = बिना बंधन की मूँज के ऐसा शरीर। थौंम = खंभा। थूनी = लकड़ी की टेक। छपर छपर = तराबोर। कोरौं = छाजन की ठाट में लगे बाँस या लकड़ी। नव कै = नए सिरे से।

(17) सहस सहस साँस = एक एक दीर्घ नि:श्वास सहस्रों दु:खों से भरा था, फिर बारह महीने कितने दु:खों से भरे बीते होंगे। तिल तिल...परि जाई = तिल भर समय एक-एक वर्ष के इतना पड़ जाता है। सेराई = समाप्त होता है। सोहाग = (क) सौभाग्य; (ख) सोहागा। सुनारी = (क) वह स्त्री, (ख) सुनारिन। झूरि = सूखकर।

(18) पुछार = (क) पूछने वाली, (ख) मयूर। चिलवाँस = चिड़िया फँसाने का एक फंदा। कागा = स्त्रियाँ बैठे कौए को देखकर कहती हैं कि 'प्रिय आता हो तो उड़ जा।' हारिल = (क) थकी हुई, (ख) एक पक्षी। धौरी = (क) सफेद, (ख) एक चिड़िया। पंडुक = (क) पीली, (ख) एक चिड़िया। चितरोख = (क) हृदय में रोष, (ख) एक पक्षी। जाहि बया = सन्देश लेकर जा और फिर आ (बया = आ—फारसी)। कँठलवा = गले में लगाने वाला। गौरवा = (क) गौरवयुक्त, बड़ा, (ख) गौरा पक्षी। दही = (क) दधि; जलाई। पेड़ = पेड़ पर। जल = जल में। तिलोरी = तेलिया मैना। कटनंसा = (क) काटता और नष्ट करता है; (ख) कटनास या नीलकंठ। निपात = पत्रहीन।

(19) घुँघची = गुंजा। सेराव = ठंडा करे। बिंब = बिंबाफल।

सूरदास

श्रीकृष्ण लीला के साथ लोकानुभव की सहजता तथा स्वाभाविकता को जोड़ने वाले मध्यकालीन कृष्णभक्ति काव्य-परम्परा के लोकविश्रुत गायक सूरदास हिन्दी की अमूल्य निधि हैं। उनकी भक्ति तथा काव्यसाधना केवल हिन्दी कविता की ही नहीं अपितु मध्यकालीन आध्यात्मिक अनुभव की सजगता के लिए सम्पूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। आध्यात्मिक अनुभव, साहित्य दृष्टि तथा संगीतमयता इन तीनों का अद्‌भुत संगम उनके सृजन का मूलधर्म है। सूरदास की अमर कृति 'सूरदास' उनके अनुभव, उनकी विवेकशीलता, उनके आध्यात्मिक चिन्तन तथा उनकी लीला दृष्टि का अद्‌भुत साक्ष्य है। उनकी अन्य कृतियाँ 'साहित्य लहरी' तथा 'सूर सारावली' बताई जाती हैं किन्तु उनके कृतित्व की श्रेष्ठता का प्रमाण उनका 'सूरसागर' ही है।

उनके जन्मकाल के विषय में पर्याप्त मतभेद हैं किन्तु अधिकांशतया आलोचक संवत् 1540 को ही उनका जन्म संवत् बताते हैं। यह अनुमान है कि उनका देहावसान संवत् 1640 के आसपास हुआ था।

सूरदास के विषय में उनकी जन्मान्धता का प्रश्न साहित्य में बार-बार उठाया जाता है। अनेक विद्वान उन्हें जन्मांध मानते हैं किन्तु उन्होंने दृश्यमान जगत का जिस प्रकार अपने काव्य में प्रस्तुत किया है, उससे यही प्रतीत होता है कि इस जगत को अपनी भौतिक आँखों मे अवश्य देखा था।

सूरदास पहले गऊघाट (मथुरा) में रहकर कीर्तनों की रचना किया करते हैं। आचार्य वल्लभ की प्रेरणा से वे उनके पुष्टिमार्ग में दीक्षित हुए और श्रीकृष्ण की भागवत लीला के साक्ष्य पर 'सूरसागर' की रचना की है। उनकी कृति 'सूरसागर' श्रीकृष्ण लीला की अमर गीति रचना है।

'सूरसागर' में प्रभु के अवतारों का वर्णन करता हुआ, अन्त में, कवि श्रीकृष्ण लीला पर अपने को केन्द्रित करता है। बाल, सख्य तथा शृंगार भाव उसकी लीलाधर्मी कविता की प्रमुख आधारभूमि हैं और कवि इन्हीं तीन भावात्मक वृत्तियों से अपने को जोड़ता है। सूर को हिन्दी ही नहीं विश्व साहित्य के बाल वर्णन की कविता का अद्वितीय कवि कहा जा सकता है। बाल लीला की सहज सुलभ नैसर्गिक चेष्टा के साथ काव्य-सृजन के प्रत्येक क्षण का कवि यहाँ उपयोग करता है। सूर की शृंगारलीला

mrnotes.in

❖❖❖❖